I.S.S.N. 0971-9024

अर्हत् वचन

ARHAT VACANA

जनवरी - 99
January - 99
वर्ष - 11, अंक - 1
Vol. - 11, Issue - 1

सराक एवं जैन इतिहास विशेषांक

तेलकूपी, सराक जैन मन्दिर

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर
KUNDAKUNDA JÑĀNAPĪṬHA, INDORE

आशीर्वचन

सराकोद्धारक युवा उपाध्याय पूज्य मुनि श्री ज्ञानसागरजी

अर्हत् वचन द्वारा **'सराक एवं जैन इतिहास विशेषांक'** का प्रकाशन बहुत प्रशंसनीय एवं ऐतिहासिक महत्व का कार्य होगा। आपका यह कार्य केवल जैन समाज में ही नहीं, केवल भारत में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व में पत्रिका का गौरव बढ़ाने वाला होगा। हमारे जो बन्धु न केवल वर्तमान में अपितु हजारों वर्षों से मांसाहारियों के बीच रह रहे हैं, जो अपने धर्मायतनों (साधुओं एवं गुरुओं) की संगति से वंचित होने के बावजूद अपने संस्कारों एवं संस्कृति को बचाये हुए हैं, ऐसे सराक बन्धुओं का जीवन जनसामान्य, विशेषत: युवाओं के लिये प्रेरणादायी रहेगा।

अर्हत् वचन तो बहुत अच्छा काम कर रही है। इस पत्रिका में इतिहास एवं पुरातत्व विषयक सुन्दर, शोधपूर्ण सामग्री सदैव से प्रकाशित होती रही है और अब हमारी आपसे नई कड़ी जुड़ रही है, यह शुभ लक्षण है। सराक क्षेत्र को आप (डॉ. अनुपम जैन) से एवं आपकी पत्रिका से बहुत अपेक्षायें हैं। हमें विश्वास है कि आप इस ओर पूरा ध्यान देंगे। मेरा शुभाशीष सदैव आपके साथ है।

तिजारा - 8.12.98

उपाध्याय ज्ञानसागर

I.S.S.N. - 0971 - 9024

अर्हत् वचन
ARHAT VACANA

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर द्वारा मान्यता प्राप्त शोध संस्थान), इन्दौर द्वारा प्रकाशित शोध त्रैमासिकी

Quarterly Research Journal of Kundakunda Jñānapīṭha, INDORE
(Recognised by Devi Ahilya University, Indore)

वर्ष 11, अंक 1 | **जनवरी - 1999**
Volume 11, Issue 1 | **January - 1999**

सराक एवं जैन इतिहास विशेषांक

मानद् - सम्पादक
डॉ. अनुपम जैन
गणित विभाग
शासकीय स्वशासी होल्कर विज्ञान महाविद्यालय,
इन्दौर - 452 001

HONY. EDITOR
DR. ANUPAM JAIN
Department of Mathematics,
Govt. Autonomous Holkar Science College,
INDORE - 452 001 (M.P.)

☎ (0731) 464074 (O) 787790 (R), Fax : 0731 - 787790

प्रकाशक
देवकुमार सिंह कासलीवाल
अध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,
584, महात्मा गाँधी मार्ग, तुकोगंज,
इन्दौर 452 001 (म.प्र.) भारत

PUBLISHER
DEOKUMAR SINGH KASLIWAL
President - Kundakunda Jñānapītha
584, M.G. Road, Tukoganj,
INDORE - 452 001 (M.P.) INDIA

☎ (0731) 545744, 545421 (O) 434718, 543075, 539081, 454987 (R)

लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों के लिये वे स्वयं उत्तरदायी हैं। सम्पादक अथवा सम्पादक मण्डल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं हैं। इस पत्रिका से कोई भी आलेख पुनर्मुद्रित करने से पूर्व सम्पादक / प्रकाशक की पूर्व अनुमति प्राप्स करना आवश्यक है।

नवगठित सम्पादक मंडल / Newly Constituted Editorial Board

प्रो. लक्ष्मी चन्द्र जैन
सेवानिवृत्त प्राध्यापक - गणित एवं
प्राचार्य - शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
दीक्षा ज्वेलर्स के ऊपर,
554, सराफा,
जबलपुर - 482 002

Prof. Laxmi Chandra Jain
Retd. Professor - Mathematics &
Principal - Govt. Post Graduate College,
Upstairs Diksha Jewellers.
554, Sarafa,
Jabalpur - 482 002

प्रो. कैलाश चन्द्र जैन
सेवानिवृत्त प्राध्यापक एवं अध्यक्ष
प्रा. भा. इ. सं. एवं पुरातत्व विभाग,
विक्रम वि. वि., उज्जैन,
मोहन निवास, देवास रोड़,
उज्जैन - 456 006

Prof. Kailash Chandra Jain
Retd. Prof. & Head,
A.I.H.C. & Arch. Dept.,
Vikram University, Ujjain,
Mohan Niwas, Dewas Road,
Ujjain - 456 006

प्रो. राधाचरण गुप्त
सम्पादक - गणित भारती,
आर - 20, रसबहार कालोनी,
लहरगिर्द,
झांसी - 284 003

Prof. Radha Charan Gupta
Editor - Gaṇita Bhāratī,
R - 20, Rasbahar Colony,
Lehargird,
Jhansi - 284 003

प्रो. पारसमल अग्रवाल
प्राध्यापक - भौतिकी,
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन,
बी - 220, विवेकानन्द कालोनी,
उज्जैन - 456 010

Prof. Parasmal Agrawal
Prof. of Physics,
Vikram University, Ujjain,
B - 220, Vivekanand Colony,
Ujjain - 456 010

डॉ. तकाओ हायाशी
विज्ञान एवं अभियांत्रिकी शोध संस्थान,
दोशीशा विश्वविद्यालय,
क्योटो - 610 - 03 (जापान)

Dr. Takao Hayashi
Science & Tech. Research Inst.,
Doshisha University,
Kyoto - 610 - 03 (Japan)

डॉ. स्नेहरानी जैन
पूर्व प्रवाचक - भेषज विज्ञान,
'छवि', नेहानगर,
मकरोनिया,
सागर (म.प्र.)

Dr. Snehrani Jain
Retd. Reader in Pharmacy,
'Chhavi', Nehanagar,
Makronia,
Sagar (M.P.)

सम्पादक / Editor

डॉ. अनुपम जैन
सहायक प्राध्यापक - गणित,
शासकीय होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय,
'ज्ञानछाया', डी - 14, सुदामानगर,
इन्दौर - 452 009

Dr. Anupam Jain
Asst. Prof. - Mathematics,
Govt. Holkar Autonomous Science College
'Gyan Chhaya', D - 14, Sudamanagar,
Indore - 452 009

सदस्यता शुल्क / SUBSCRIPTION RATES

	व्यक्तिगत INDIVIDUAL	संस्थागत INSTITUTIONAL	विदेश FOREIGN
वार्षिक / Annual	रु./Rs. 100=00	रु./Rs. 200=00	U.S. $ 25=00
आजीवन / Life Member	रु./Rs. 1000=00	रु./Rs. 1000=00	U.S. $ 250=00

पुराने अंक सजिल्द फाईलों में रु. 400.00/ U.S. $ 50.00 प्रति वर्ष की दर से सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं।

सदस्यता शुल्क के चेक / ड्राफ्ट कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के नाम इन्दौर में देय ही प्रेषित करें।

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अनुक्रम / INDEX

सम्पादकीय - सामयिक सन्दर्भ 5
□ अनुपम जैन

लेख / ARTICLES

सराक क्षेत्र - जैन प्राचीनतम धर्मावलम्बियों का निवास स्थान 9
□ अशोककुमार जैन

जैन संस्कृति की पोषक सराक प्रजाति 17
□ अभयप्रकाश जैन

उत्कल के जैन वंशज- वर्तमान सराक 21
□ रामजीत जैन, एडवोकेट

सराक जाति की विशेषतायें 29
□ कस्तूरचन्द कासलीवाल

सराक साहित्य - एक सर्वेक्षण 31
□ अनुपम जैन

भद्रबाहु - जैन इतिहास का दीप स्तम्भ 37
□ सूरजमल बोबड़ा

तीर्थंकर दिव्यध्वनि की भाषा 45
□ नाथूलाल जैन शास्त्री

Cultural Identity of the Jaina Influence on the Tribal Rituals of Korāpūta 49
□ A. P. Jain

साक्षात्कार / Interviews

उपाध्याय मुनि श्री ज्ञानसागरजी, तिजारा - ६.12.98 55
□ अनुपम जैन

पुस्तक समीक्षायें / Book Reviews

The Jain Sancuaries of the Fortress of Gwalior by T.V.G. Sastri 61
□ शैलेन्द्र रस्तोगी

महाश्रमणी अभिनन्दन ग्रन्थ 62
□ अनुपम जैन

Jainism - A Pictorial Guide to the Religion of Non-Violence by Kurt Titze 62
□ Anupam Jain

संक्षिप्त आख्या / Brief Reports
चतुर्थ जैन विज्ञान विचार संगोष्ठी, बीना 2 - 4 अक्टूबर 98 63
☐ निहालचन्द जैन
आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव - शिक्षा एवं दर्शन राष्ट्रीय संगोष्ठी, कुरुक्षेत्र, 16 - 17 जनवरी 99 65
☐ अनुपम जैन
गतिविधियाँ 67
ज्ञानपीठ के प्रांगण से 69
कार्य विवरण
भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, जम्बूद्वीप - हस्तिनापुर, 4 - 6 अक्टूबर 98 81
☐ अनुपम जैन
मत - अभिमत 97
विशेष परिशिष्ट - साहू श्री अशोककुमारजी जैन का निधन

अगले अंक में

Jaina Paintings in Tamilnadu

☐ T. Ganesan, Thanjavur

The Early Kadambakas and Jainism in Karnataka

☐ A. Sundara, Sholapur

जैन आगम साहित्य में अर्थ चिन्तन

☐ गणेश कावड़िया, इन्दौर

Are All Tribals Hindu/Jain ?

☐ अभयप्रकाश जैन, ग्वालियर

बलात धर्म परिवर्तन के स्मारक - सराक

☐ रामजीत जैन, एडवोकेट

तीर्थंकर ऋषभनाथ और उनकी साधनास्थली विशाला

☐ गुलाबचन्द जैन, विदिशा

जैन समाज में नारी की हैसियत

☐ गोपीलाल 'अमर', नईदिल्ली

बौद्ध एवं मौर्य काल में पत्नी उत्पीड़न

☐ जयश्री सुनील भट्ट, सागर

शक तथा सातवाहन सम्बन्ध

☐ नेमचन्द डोणगांवकर, देउलगांवराजा

अभिलेखों के आधार पर मालवा की मध्यकालीन दि. जैन जातियाँ

☐ प्रकाशचन्द जैन, उज्जैन

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य आलेख, टिप्पणी, समीक्षायें तथा नोटिस ऑफ पब्लिकेशन्स, स्तम्भ आदि।

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

सामयिक सन्दर्भ

दूसरे दशक की पहली दहलीज पर खड़े होकर हम अपने विज्ञ लेखकों एवं सुधी पाठकों का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। सितम्बर 88 में प्रवेशांक के प्रकाशन से प्रारंभ यह यात्रा 40 पड़ावों को पार कर आज इस मुकाम पर है कि हम 11 वें वर्ष का प्रथम अंक 41 वें अंक के रूप में आपको समर्पित कर रहे हैं। आह्लाद के ये क्षण आये हैं वर्ष 1999 के शुभारंभ में, फलतः हम ईसवी नव वर्ष की शुभकामनायें भी अपने पाठकों को प्रेषित कर रहे हैं। 1999 उनके लिए मंगलमय हो, यश एवं श्री वृद्धिदायक हो, यही मंगलकामना है।

निदेशक एवं सम्पादक मण्डल का पुनर्गठन

गत 20 दिसम्बर को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परामर्शदात्री समिति की बैठक विख्यात शिक्षाविद प्रो. अब्दुल असद अब्बासी, पूर्व कुलपति - देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। इसकी अनुशंसा के आधार पर ज्ञानपीठ के अध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल ने कार्य परिषद की सहमति से आगामी 2 वर्षों (1999 एवं 2000) हेतु निम्नवत ज्ञानपीठ के निदेशक मंडल का निम्नवत गठन किया है।

अध्यक्ष : ***प्रो. नवीन सी. जैन, इन्दौर***

सदस्य : ***पं. नाथूलाल जैन शास्त्री - इन्दौर, प्रो. आर.आर. नांदगांवकर - नागपुर, प्रो. ए.ए. अब्बासी - इन्दौर, प्रो. नलिन के. शास्त्री - बोधगया (बिहार), प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल - मेरठ***

सदस्य - सचिव : ***डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर***

अपने सुयोग्य मार्गदर्शन एवं सक्रिय सहयोग से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ को वर्तमान स्थिति तक पहुँचाने वाले पूर्ववर्ती निदेशक मण्डलों के सभी सदस्यों के प्रति हम ज्ञानपीठ की ओर से कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं एवं आशा करते हैं कि उनका संरक्षण एवं सहयोग भविष्य में भी प्राप्त होता रहेगा। नवगठित मंडल का मार्गदर्शन एवं सहयोग हमें प्रगति के राजमार्ग पर ले चलेगा जिससे हम जैन विद्याओं के अध्ययन / अनुसंधान को गतिमान करने के लक्ष्य की ओर द्रुतगति से बढ़ सकें।

जनवरी 99 से ही आपकी इस प्रिय पत्रिका के सम्पादक मंडल का भी पुनर्गठन किया गया है। आगामी 2 वर्षों (1.1.1999 - 31.12.2000 तक) हेतु मनोनीत सम्पादक मण्डल की सूची पृ. - 2 पर प्रकाशित है। हमें विश्वास है नवगठित सम्पादक मण्डल से दिशा लेकर हम अर्हत् वचन की अधिक सार्थक भूमिका सुनिश्चित कर सकेंगे। गत दशक की यात्रा में अर्हत् वचन की प्रतिष्ठा एवं लोकप्रियता दोनों बढ़ी है फलतः हमसे अपेक्षायें भी बढ़ी हैं। बदली परिस्थितियों में समस्यायें एवं चुनौतियाँ भी बढ़ रही हैं किन्तु इन सबके बीच भी अपने दायित्व का बोध रखते हुए जिनवाणी की निष्ठापूर्वक सेवा करने हेतु हम सतत प्रयत्नशील रहेंगे। पाठकों से अपेक्षा है कि वे सदस्यता वृद्धि में हमें अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करें। सदस्यता वृद्धि हेतु ज्ञानपीठ की कार्यपरिषद ने सदस्यता शुल्क को 10 वर्ष पूर्व के स्तर पर ही रखते हुए निःशुल्क वितरण को पूर्णतः प्रतिबंधित कर दिया है। सभी के सहयोग से प्रसार संख्या में वृद्धि कर हम इसके आधार को व्यापक एवं सुदृढ़ कर सकेंगे।

सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति के वर्तमान युग में देश - विदेश के शोध केन्द्रों / शोध संस्थाओं / विश्वविद्यालयों से सतत, सहज एवं त्वरित सम्पर्क बनाये रखने हेतु एवं संस्थान की शोधों / मान्यताओं को व्यापक रूप

से प्रचारित-प्रसारित करने हेतु ज्ञानपीठ द्वारा स्वयं के संगणन केन्द्र के विकास का निश्चय किया गया। इस केन्द्र की स्थापना कर 2 संगणकों (Computers), मुद्रकों (प्रिन्टरों) आदि की स्थापना की जा चुकी है। फरवरी के प्रथम सप्ताह से E. Mail आदि की सुविधायें भी प्रारंभ हो जायेंगी। इसकी स्थापना में प्रदत्त सहयोग हेतु हम डा. डी.के. बोबरा, अमेरिका एवं उनके परिवार के सभी सदस्यों के आभारी हैं।

प्रकाशित जैन साहित्य - सूचीकरण परियोजना -

गत 100-150 वर्षों में विपुल परिमाण में जैन साहित्य प्रकाशित हुआ है। इसके बावजूद भी आज ग्रंथ भंडारों में सैकड़ों ग्रंथ अप्रकाशित हैं। यह समाज के लिए अत्यंत दु:खद है कि आज बीसवीं सदी के अंतिम वर्ष में भी हम न तो अपने ग्रंथ भंडारों का पूर्णत: सर्वेक्षण करा सके एवं न उनका सूचीकरण। इसी कारण आज हमारे पास पाण्डुलिपि के रूप में सुरक्षित ग्रंथों की सूची भी उपलब्ध नहीं है। जब भी किसी नए भंडार का सूचीकरण होता है, तब यह समस्या आती है कि कितने ग्रंथ अद्यतन अप्रकाशित है एवं कितने अप्रकाशित। इसका निर्धारण हो जाने पर सीमित मात्रा में अद्यतन अप्रकाशित ग्रंथों का संरक्षण प्राथमिकता के आधार पर किया जा सकता है। शोध एवं अनुसंधान कार्य में लगे विद्वानों के लिए प्रकाशित साहित्य की जानकारी भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि इसके माध्यम से ही वे पुनरावृत्ति के दोष एवं निरर्थक श्रम से बच पाते हैं। लगभग 50 वर्ष पूर्व प्रकाशित ग्रंथों में भी आज अनेकों अनुपलब्ध हैं एवं नई पीढ़ी को उनके नाम भी ज्ञात नहीं हैं। किसी भी नये अप्रकाशित ग्रंथ के सम्पादन/प्रकाशन के समय उसकी अन्य पांडुलिपियों की खोज भी नितान्त आवश्यक होती है। सम्यक जानकारी के अभाव में बहुत श्रम एवं धन अन्य पांडुलिपियों की खोज में व्यर्थ चला जाता है। शोधार्थियों की सुविधा तथा प्रकाशित/अप्रकाशित साहित्य के संरक्षण की प्रक्रिया के प्रथम चरण में प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण की परियोजना कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा बनाई गई है।

सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर द्वारा भी इसी प्रकार की असुविधाओं का गत 2 वर्षों से अनुभव किया जा रहा था। उन्होंने इसके समाधान हेतु अनेक संस्थाओं एवं विद्वानों से सम्पर्क किया। सम्पर्क के क्रम में उन्होंने कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर से भी पत्राचार द्वारा सम्पर्क किया एवं ज्ञानपीठ के आमंत्रण पर चर्चा हेतु ट्रस्ट के प्रतिनिधि के रूप में श्री हीरालाल जैन, भावनगर नवम्बर 98 में पधारे। इस चर्चा के माध्यम से वर्तमान योजना के प्रारूप को अंतिम रूप दिया गया।

सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के संयुक्त तत्वावधान में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा संचालित इस परियोजना का क्रियान्वयन 1 जनवरी 99 से प्रारम्भ किया जा चुका है। हमें ज्ञात है कि पूर्व में भी कुछ विद्वानों एवं संस्थाओं ने एतद् विषयक प्रयास किये हैं किन्तु प्रकाशन का कार्य इतनी तीव्र गति से बढ़ा है कि वे प्रयास अब नाकाफी हो गये तथा इस कार्य को बीच में ही छोड़ देने के कारण परिणाम अधिक उपयोगी न बन सके। हमारी योजना के अनुसार हम इस परियोजना के प्रतिफल को इन्टरनेट एवं प्रिन्ट मीडिया द्वारा सर्वसुलभ करायेगें। मात्र इतना ही नहीं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इस सूची का निरन्तर परिवर्द्धन करता रहेगा एवं जिनवाणी के उपासकों हेतु यह सदैव सुलभ रहेगी। हमारा अनुरोध है कि -

1. जिन संस्थाओं ने पूर्व में प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण का प्रयास किया है वे अपनी सूचियों की छाया प्रतियाँ या फ्लापियाँ उपलब्ध कराने का कष्ट करें। छाया प्रतियों (फोटोकॉपी) या फ्लापियों का व्यय देय तो रहेगा ही, उनके सहयोग का सादर उल्लेख भी भावी प्रकाशन में किया जायेगा।
2. समस्त ग्रंथ भंडारों/पुस्तकालयों के प्रबंधकों से भी अनुरोध है कि वे अपने संकलनों की परिग्रहण पंजियों (Accession Registers) की छाया प्रतियाँ हमें भिजवाने का कष्ट करें। एतदर्थ शुल्क ज्ञानपीठ

द्वारा देय होगा। यदि आवश्यकता हो तो हमारे प्रतिनिधि भी आपकी सेवा में उपस्थित हो सकते हैं।

3. जिन विद्वानों / प्रकाशकों ने जैन साहित्य का लेखन / प्रकाशन किया है उनसे भी निवेदन है कि वे पूर्ण सूचियाँ लेखक / शीर्षक / प्रकाशक / प्रकाशन स्थल / प्रकाशन वर्ष / संस्करण / मूल्य / प्राप्ति स्रोत / विषय आदि सूचनाओं सहित शीघ्र - अतिशीघ्र हमें भिजवाने का कष्ट करें।

4. इस परियोजना के अन्तर्गत अप्रकाशित पांडुलिपियों की सूचियाँ भी संकलित की जायेंगी किन्तु उनका प्रकाशन एवं समग्र सूचीकरण दूसरे चरण में किया जायेगा।

सभी विद्वानों / प्रकाशकों / भंडारों के व्यवस्थापकों / पुस्तकालयाध्यक्षों / संस्थाओं के पदाधिकारियों से इस महत्वाकांक्षी विस्तृत परियोजना में सहयोग का विनम्र आग्रह है।

सराक एवं जैन इतिहास विशेषांक

अर्हत् वचन ने अपनी 10 वर्षों की यात्रा में

1. जैन गणित अंक - 1, **1** (1), सितम्बर 88
2. जैन गणित अंक - 2, **1** (2), दिसम्बर 88
3. संगोष्ठी विशेषांक, **4** (2 - 3), अप्रैल - जुलाई 92
4. गोपाचल विशेषांक, **5** (1), जनवरी 93
5. जैन पर्यावरण अंक, **6** (3), जुलाई 94
6. जैन धर्म एवं विज्ञान विशेषांक - 1, **9** (2), अप्रैल 97
7. जैन धर्म एवं विज्ञान विशेषांक - 2, **9** (3), जुलाई 97
8. ऋषभदेव अंक - **10** (1), जनवरी 98

सदृश बहुचर्चित विशेषांकों का प्रकाशन किया। श्रवणबेलगोला एवं अयोध्या में महामस्तकाभिषेक के अवसर पर क्रमशः **6** (1) जनवरी 94 तथा **6** (2) अप्रैल 94 के अंकों में सामयिक सामग्री का विशेष रूप से प्रकाशन किया गया। इसके विपरीत हम घोषणा किये जाने के बावजूद शाकाहार विशेषांक एवं जैन ज्योतिर्विज्ञान विशेषांक का प्रकाशन अब तक नहीं कर सके हैं। निकट भविष्य में हमें इनका प्रकाशन करना है। पूर्व घोषणानुरूप हम Notices of Publications स्तम्भ भी अगले अंक से शुरू कर रहे हैं।

अर्हत् वचन द्वारा महत्वपूर्ण विषयों पर विशेषांक प्रकाशन की श्रृंखला में दूसरे दशक का यह प्रथम अंक **सराक एवं जैन इतिहास विशेषांक** के रूप में आपके हाथों में है।

5 - 6 नवम्बर 95 को पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी के सान्निध्य में **अ.भा. पत्रकार सम्मेलन** एवं **सराक सम्मेलन** का संयुक्त रूप से आयोजन बड़ागाँव (मेरठ) में किया गया था जिसमें उपस्थित अनेक पत्रिकाओं के सम्पादकों ने अपनी - अपनी पत्रिका के सराक विशेषांक निकालने की घोषणा की। अर्हत् वचन की विशिष्ट प्रकृति के अनुरूप विशेषांक निकालना किंचित कठिन होने के कारण मैंने घोषणा तो नहीं की किन्तु सहयोगी पत्रकार बन्धुओं एवं विद्वानों से चर्चा के माध्यम से मेरे मन में भी अर्हत् वचन में एतद् विषयक सामग्री के प्रकाशन की भावना जागृत हुई और अन्ततोगत्वा हमनें इस पर विशेष सामग्री युक्त अंक के प्रकाशन की घोषणा कर सामग्री संकलन का कार्य प्रारंभ हुआ। सर्वप्रथम तो मैं हमारे आग्रह पर सामग्री प्रेषित करने वाले माननीय लेखकों - भाई अशोक कुमार जैन (तिजारा), डा. अभयप्रकाश जैन (ग्वालियर), श्री रामजीत जैन एडवोकेट (ग्वालियर) एवं डा. कस्तूरचंद कासलीवाल तथा पुस्तक भेजने हेतु डा. नीलम जैन (सहारनपुर) के प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ किन्तु इस अंक हेतु अत्यन्त तत्परता से सम्बद्ध साहित्य एवं अनेकानेक फोटो उपलब्ध कराने हेतु मैं **ब्र. अतुलजी**

के प्रति विशेष कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहूँगा जिन्होंने निस्पृह भाव से अत्यन्त रूचिपूर्वक बहुत सी सामग्री एवं दुर्लभ चित्र उपलब्ध कराकर मेरा काम आसान किया।

8 दिसम्बर 98 को तिजाराजी में उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी ने इस विशेषांक के प्रकाशन हेतु अपना मंगल आशीर्वचन एवं साक्षात्कार प्रदान कर जो महती अनुकम्पा की है उस हेतु सम्पादक मंडल उनके प्रति विनयावनत है। न केवल इस अंक अपितु अर्हत् वचन के आगामी अंकों हेतु भी हमें उनका परोक्ष आशीर्वचन सदैव उपलब्ध रहेगा यही कामना है।

अर्हत् वचन के प्रस्तुत अंक के सम्पादन के निमित्त से मुझे सराक जाति एवं सराक क्षेत्र के बारे में अधिक पढ़ने का अवसर मिला। मैंने अब तक प्रकाशित साहित्य को सूचीबद्ध करने का प्रयास इसी भाव से किया है कि जो बन्धु पढ़ना चाहें, उन्हें क्या - क्या छपा है? इसकी पूरी जानकारी मिल सके। मेरे विचार से धार्मिक पत्र - पत्रिकाओं की सीमा से बाहर निकल कर बिहार, बंगाल, उड़ीसा की जनजातियों की पृष्ठभूमि, उनके पूर्व इतिहास, विकास एवं पराभव के कारणों, धार्मिक मान्यताओं, इस क्षेत्र के विस्तृत पुरातात्विक सर्वेक्षण, तकनीकी छायांकन, अभिलेखीकरण, मूल्यांकन, विस्तृत जनगणना, सामाजिक, आर्थिक स्थिति के विश्लेषण एवं समग्र सामुदायिक विकास की योजनाओं के निर्माण की आवश्यकता है। सम्पूर्ण परियोजना को वि.वि. अनुदान आयोग अथवा समान प्रकार की शासकीय संस्थाओं, निजी ट्रस्टों के सहयोग से अकादमिक तटस्थता बरतते हुए मानकीकृत रूप में 3 - 5 वर्षों की अवधि में संचालित किया जाना चाहिये, जिससे इनकी मूल संस्कृति, सभ्यता को सुरक्षित रखते हुए उन्हें समाज की मुख्य धारा में जोड़ने हेतु ठोस आधार बनाया जा सके। सराक विषयक प्रकाशनों का मानकीकरण भी एक तात्कालिक आवश्यकता है।

अर्हत् वचन का प्रस्तुत अंक महज एक शुरुआत है। नवीन सम्पर्कों, प्राप्त सामग्री एवं प्रदीप्त अभिरूचि के कारण यदि संभव हुआ तो भविष्य में सराक क्षेत्रों का प्रत्यक्ष भ्रमण कर/कराकर अधिक मौलिक/शोधपूर्ण सामग्री सहित एक और विशेषांक प्रकाशित किया जा सकेगा। मुझे यह स्वीकर करने में कोई संकोच नहीं है कि इस अंक में संकलित सराक विषयक सामग्री से शोध जगत के ज्ञान में कोई नई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई है क्योंकि एतद्विषयक इस अंक में प्रकाशित सामग्री सर्वेक्षणात्मक प्रकृति की है किन्तु यदि शोधकार्य से सीधे जुड़े विद्वानों में इस अंक में प्रकाशित सामग्री रूचि जाग्रत कर सकी एवं उनके भावी अध्ययन हेतु आधारभूत सामग्री उपलब्ध करा सकी तो मैं प्रयास को सार्थक समझूँगा।

अन्त में मैं दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट के सभी ट्रस्टियों एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ कार्यपरिषद के सभी सदस्यों के प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ जिनके आर्थिक संरक्षण से ही पत्रिका का सतत प्रकाशन संभव हो रहा है। मैं नवगठित निदेशक मण्डल, सम्पादक मण्डल, माननीय लेखकों एवं ज्ञानपीठ कार्यालय के अपने सभी सहयोगियों को भी धन्यवाद देना चाहूँगा जिनका समर्पण भाव ही ज्ञानपीठ एवं अर्हत् वचन की मुख्य शक्ति है।

होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय के प्राचार्य एवं गणित विभाग के सभी सहयोगी प्राध्यापकों का परोक्ष सहयोग अविस्मरणीय है क्योंकि उसके बिना इन अकादमिक कार्यों हेतु समय निकाल पाना असंभव है।

सुन्दर, आकर्षक मुद्रण हेतु सुगन ग्राफिक्स तथा प्रोत्साहन हेतु सुधी पाठक भी बधाई के पात्र हैं।

डॉ. अनुपम जैन

14.1.99

वर्ष - 11, अंक - 1, जनवरी 99, 9 - 15

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

सराक क्षेत्र
प्राचीनतम जैन धर्मावलम्बियों का निवास स्थान

■ अशोक कुमार जैन *

उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी की प्रेरणा से सराक जाति के सम्बन्ध में कुछ लिखने का साहस कर रहा हूँ। फलत: मुझे सराक सम्बन्धी साहित्य उपलब्ध होने में कठिनाई नहीं हुई जो भी अब तक लिखा गया है उसी से कुछ निष्कर्ष निकालने में मेरा प्रयास है। कितना सफल है? यह मैं स्वयं नहीं जानता। इस सम्बन्ध में मेरी समस्त जानकारी पूर्व प्रकाशित पुस्तकों एवं पुराणों पर ही निर्भर रही है, सराक क्षेत्र में जाने का अवसर मुझे नहीं मिला है। विद्यार्थी जीवन में इतिहास मेरा प्रिय विषय रहा है विभिन्न अंचलों के नामकरण का अर्थ ढूंढ़ना स्वभाव है।

सराक शब्द **श्रावक** का अपभ्रंश है इसमें सन्देह नहीं होना चाहिए। साधारण रूप में यह शब्द सरावक होना चाहिए। उड़ीसा में 'व' अक्षर 'उ' जैसी ध्वनि से उच्चारित किया जाता है जैसे वहाँ की एक जाति राउल है। **सरावक** शब्द का **'व' 'उ'** बनकर **सराउक** और शब्दों के उच्चारण में व्यंजन की अपेक्षा स्वर को विलीन होते देर नहीं लगती। अत: स्वाभाविक ही सराउक का **सरोक** या **सराक** बन गया।

साधारणत: सराक क्षेत्र बिहार के राँची जिले से पश्चिम बंगाल के पश्चिमी भूभाग, दक्षिण बिहार, सम्पूर्ण उड़ीसा और उत्तरी एवम् तटीय आन्ध्रप्रदेश तक माना जाता है। मानभूम प्रदेश (सन्थाल परगना के आसपास) के सम्बन्ध में सन् 1986 में कर्नल डेल्टन ने एशियाटिक सोसाइटी जनरल में लिखा है[1] कि इस स्थान पर प्राचीन कला के अनेक चिन्ह मिलते हैं। ये चिन्ह वास्तव में उन लोगों के हैं जो स्वयं को सराक कहते हैं। ये शायद भारत के इस भूभाग में सबसे प्राचीन निवासी हैं। इन लोगों के मंदिरों के चिन्ह व खण्डहर दामोदर, कसाई व अन्य जगहों पर हैं। ये लोग जीव हिंसा से घृणा करते हैं व सूर्यास्त से पूर्व भोजन कर लेते हैं।

पं. बलभद्र जैन[2] ने भारत वर्ष के दिगम्बर तीर्थ - भाग - 2 में लिखा है कि सिंह भूमि जिले के पूर्वी भाग में रहने वाले सराक लोग विश्वास करते है कि वे पहले अग्रवाल थे, पार्श्वनाथ की पूजा करते थे, सरयू नदी के तटवर्ती प्रदेशों में रहते थे, गाजीपुर जिले में सरयू व गंगा के संगम पर उनका सोने - चांदी (सराफा) का व्यापार था। सराक क्षेत्र में काम करने वालों में पं. बाबूलालजी 'जमादार' का नाम अत्यन्त श्रद्धेय है। उन्होंने सराक लोगों को जैन संस्कृति का विस्मृत प्रतीक कहा है[3] लेकिन उनके संस्कार, पार्श्वनाथ भगवान के प्रति श्रद्धा, भोजन वृत्ति का जो वर्णन उनकी अन्य पुस्तकों में उपलब्ध है उनसे लगता है कि भारत वर्ष में अन्य स्थानों पर रह रहे जैन तो जैन संस्कृति के प्रतीक मात्र ही हैं जबकि सराक आज भी वास्तविक जैन जीवन शैली जी रहे हैं। प्रसंगवंश यहाँ यह कहना अनुचित नहीं है कि राजस्थान के जयपुर जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में अनेकों जैन मंदिर विद्यमान है और वहाँ जैन समाज भी है किन्तु लगभग सभी जगहों पर एक या अधिक बार जैन प्रतिमाओं व अन्य धार्मिक चिन्हों की चोरी हो चुकी है।

प्राय: सभी लेखकों ने सराक लोगों को भगवान पार्श्वनाथ का अनुयायी बताते हुए लिखा है कि वे अपना कुल देवता भगवान पार्श्वनाथ को मानते हैं। इस सम्बन्ध में यह

* अशोक आइल मिल्स, तिजारा जि. अलवर (राजस्थान)

नहीं समझा जाना चाहिए कि सराक क्षेत्र में भगवान पार्श्वनाथ से पूर्व जैन धर्म नहीं था। भारत वर्ष में प्रायः सभी जातियों में उनके कुलदेवता होते है। साधारणतया अपने ही कुल में उत्पन्न कोई महापुरूष जिसने अपने ही धर्म और परम्परा को सुदृढ़ करने व मान्यताओं व आचरण को अधिक निर्मल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है और एक विस्तृत भूभाग में रहने वाले जनसाधारण में उसका प्रभाव रहा हो। ऐसे असाधारण व्यक्तित्व को सहज ही कुल देवता मान लिया जाता है और पीढ़ी दर पीढ़ी उस जगह के दर्शन करने की भावना भी मन में बनी रहती है जहाँ से उस व्यक्तित्व का निर्वाण हुआ हो। सराक क्षेत्र में पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी, उपाध्याय श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज एवम् पं. बाबूलाल जी 'जमादार' के सद्प्रयत्नों से जो कुछ सराक भाइयों के मनोवृत्ति के सम्बन्ध में जानकारी मिली है उसमें उनकी यह भावना दृष्टव्य है कि वे वर्ष में कम से कम एक बार सम्मेद शिखर (रांची - धनबाद जिले के सराक) एवं खण्डगिरि - उदयगिरि (उड़ीसा के सराक बन्धु) या इनमें से किसी एक क्षेत्र की यात्रा अवश्य करना चाहते हैं। मेरा यह विनम्र निवेदन है कि सराक क्षेत्र में जैन धर्म भगवान पार्श्वनाथ से आरंभ हुआ नहीं मानना चाहिए अपितु यह अधिक प्राचीन है। सराक लोगों में कृषि करो या ऋषि बनो की धारणा पर्याप्त बलवती है और वहां पर भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमायें उसी अनुपात में प्राप्त हुई हैं जैसे कि भारत वर्ष के अन्य स्थानों पर। भगवान आदिनाथ की प्रतिमाओं की संख्या भी वहाँ बहुत है और अन्य तीर्थंकरों की भी। मानभूमि जिले के देवल टाड नामक स्थान पर लगभग 4 हाथ ऊँची भगवान आदिनाथ की प्रतिमा के दर्शन सेठ बैजनाथ सरावगी कर चुके हैं[4] इसी स्थान के सामने 1 हाथ ऊँचीं भगवान पद्मप्रभ की प्रतिमा का उल्लेख भी इसी अंक में है। पाकवीर नामक स्थान सराक क्षेत्र में पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुका है वहाँ पर भी 9 फुट उँचे भगवान आदिनाथ है व अन्य अनेक मूर्तियों पर बैल या कमल का चिन्ह है। इसी स्थान पर प्राप्त एक चैत्य के चारों ओर क्रमशः महावीर, शान्तिनाथ, ऋषभदेव व कुन्थुनाथ खड्गासन मुद्रा में आसीन हैं।

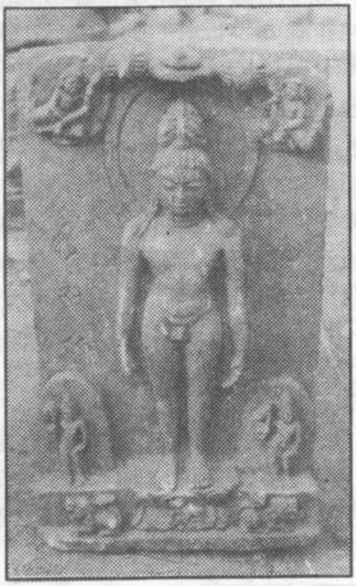

ऋषभनाथ पाकबिरा 7 वीं शताब्दी

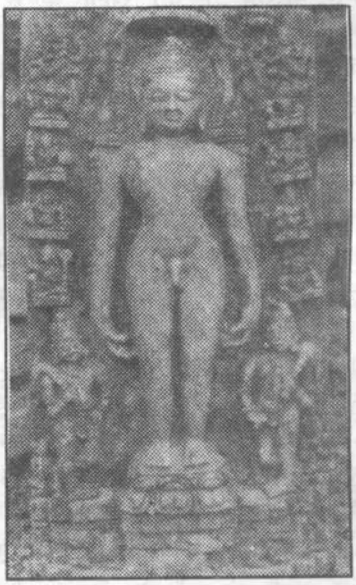

शान्तिनाथ पाकबिरा 10 वीं शताब्दी

भगवान पार्श्वनाथ ने प्राय: इसी क्षेत्र में विहार कर जन - जन की आत्माओं में निर्मलता का अहसास कराया था। यद्यपि उनके विहार क्षेत्र के सम्बन्ध में अधिक जानकारी मुझे उपलब्ध नहीं हो सकी तथापि यहाँ यह विचारणीय है कि बिहार प्रान्त का नाम भगवान पार्श्वनाथ के समय क्या था? इसका उल्लेख मेरे देखने में नहीं आया है। भगवान महावीर के समय सत्ता का केन्द्र राजगृही था व उस समय मगध एक बडे भूभाग का द्योतक था लेकिन सराक क्षेत्र उसमें सम्मिलित नहीं था। भगवान महावीर के समय कलिंग देश में सम्पूर्ण सराक क्षेत्र सम्मिलित था। बिहार का **बिहार** नाम भगवान महावीर एवम् प्राय: समकालीन गौतम बुद्ध के विहार होते रहने से पड़ा हुआ इतिहासकार मानते हैं। महाराज बिम्बसार श्रेणिक से पूर्व की स्थिति की जानकारी मुझे प्राप्त नहीं हो सकी।

सराक क्षेत्र में जैन समाज के पवित्रतम क्षेत्रों की स्थिति भी पर्याप्त है। सर्वमान्य तीर्थराज सम्मेदशिखर सराक क्षेत्र की उत्तरी सीमा मानी जा सकती है तो जगन्नाथपुरी दक्षिण। यहाँ पूज्य गणेश प्रसादजी वर्णी का यह मत दृष्टव्य है कि मद्रास प्रान्त (अब तमिलनाडु) के गंजम जिला में भी एक ऐसी जाति निवास करती है जिनके आचार, व्यवहार जैनों से मिलते हैं (नयनार जाति)[5] उन्होंने कोटिशिला की उपस्थिति इसी स्थान पर बताई है। जैनियों के बीस तीर्थंकरों की पावन निर्वाण भूमि सराक क्षेत्र में सम्मेदशिखर के रूप में स्थित है। अन्य चार तीर्थकरों में से 2 भगवान वासुपूज्य चम्पापुर से व भगवान महावीर पावापुरी से मोक्ष गये हैं। ये दोनों बिहार में ही हैं। कोटिशिला की स्थिति की जानकारी नहीं हुई है। यद्यपि इस सम्बन्ध में जो मत हैं वे इसे सराक क्षेत्र में मानते हैं। डा. बलभद्र जैन ने कोटिशिला को विभिन्न पुरातत्ववेत्ताओं के निष्कर्षों के आधार पर खण्डगिरि - उदयगिरि पर्वत पर कुमारी पर्वत के रूप में पहचाने जाने के लिए अपना मत दिया है।[6] भगवान महावीर के केवल ज्ञान के स्थान की भी पहचान अभी बाकी है। यद्यपि आचार्य भद्रबाहु ने भगवान महावीर के जीवन की घटनाओं को 300 वर्ष पश्चात ही लिपिबद्ध कर दिया था। जैन भवन कलकत्ता से प्रकाशित पत्रिका तित्थयर[7] में श्री हरि प्रसाद तिवारी एवम् नृसिंह प्रसाद तिवारी के एक लेख में अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण ढंग से इस स्थल को खोजने का प्रयास किया है। कल्पसूत्र के लेखक आ. भद्रबाहु स्वामी ने अत्यन्त स्पष्ट लिखा है -

जंभियगामस्स नगरस्स वहिया उजवालियाए नई तीरे.....

वियावओस्स चेइयस्य अदूर सामन्ते सामागस्स गाहावइस्य कट्ट करणंसि साल पायवस्स

अर्थात जंभिय गाव के नगर के बाहर उजुवल्ली नदी के किनारे शालवृक्ष के नीचे उजवालियाए शब्द की पश्चात कालीन टीकाकारों ने ऋजुकूला लिखा है। लेखक द्वय ने इसे ऋजुपाजिका कहा है। इसे उज्जवला क्यों नहीं कहा? स्वामी भद्रबाहु ने भगवान की निर्वाणस्थली की इतनी स्पष्ट रुपरेखा दी है कि अनुमान लगाने के लिए स्थान नहीं है। जमीन के स्वामी का नाम, नदी का नाम, गाँव का नाम और मंदिर (वियावओं चैत्य) का नाम भी जिसके समीप यह घटना हुई। फिर भी हम उस स्थान को पहचान नहीं पा रहे है। तित्थयर के एक अन्य लेख में लेखक द्वय ने भगवान के केवल्य स्थान को, वर्तमान में प्रवाहित अजयनदी जहाँ बिहार से बंगाल में प्रवेश करती है वहां पर चिचुरविल नामक एक दूसरे से 3 मील की दूरी पर दो गांव है। यहाँ एक ही नाम के दो ग्राम हैं। ऋजुपालिका नदी के प्रवाह से उत्पन्न घाटियों को बिल कहा है और ये बिल ऋजुरबिल कहे है ऋजुरबिल का यह क्रमश: वर्तमान रूप चिजुरबिल एवं पुन: परिवर्तित चिचुरबिल है। लेखकों का कहना यह भी है कि ई. सन् 1174 - 76 में गोविन्दपाल व उसके ही वंशज गोविन्दपाल ने

ऋजुपालिका नदी के किनारे एक लघु विजय अभियान छेड़ा था। जैन धर्म को क्षत - विक्षत करने का और इस अभियान के अन्तर्गत उसने मृदावली (मुंगेर) से ऋजुपालिका नदी के किनारे उन सभी स्थानों को नष्ट किया जो जैन धर्म से सम्बन्धित थे। इस अभियान के मार्ग में अनेक गांवों के नाम बदलकर उसने गोविन्दपुर रख दिया और आज भी अनेक गांव इस नाम के उस अंचल में हैं। अहिंसा के पुजारी, अहिंसा के प्रणेता का कोई चिन्ह शेष न रहे इसलिए उसी ने अजयनदी के दोनों किनारों पर पशुबली के केन्द्र स्थापित किये। इसी आधार पर लेखकों ने दोनों चिचुरबिल गाँवो से चार मील पश्चिम की ओर स्थित जाम ग्राम को गढदिगम्बर नाम की पहाड़ी की तलहटी में माना है। इस गॉव के पास देवता विहीन एक मंदिर है और एक नवनिर्मित शिव मंदिर भी है। यह नया मंदिर पुरातन मंदिर के अवशेषों पर बना है और लेखक द्वय का मानना है यही वैयावृल चैत्य है। देवता विहीन मंदिर की दीवारों पर एक शिलालेख को पढ़ा जाना शेष है। इस मंदिर से नदी 50 गज की दूरी पर है और इस क्षेत्र को सामापुर (सामागस्स) कहाँ जाता है। जंभीय ग्राम की पूर्वी सीमा पर सरिसासली गांव के पास सिंह शीर्ष प्रस्तर स्तंभ भी खड़ा है जिसके नीचे अजयपाल ने हनुमान की मूर्ति खुदवा दी थी। लेखकों की मान्यता है कि गढ़ दिगम्बर पहाड़ जो नाम से ही जैन प्रतीत होता है वहां कुन्डेनेश्वर (महावीर भगवान) मंदिर था उसे काण्डेश्वर शिव मंदिर में परिवर्तन किया गया और पशुबली आरंभ करवा दी गई। प्रसिद्ध देवधर वैद्यनाथ धाम से यह जंभीय ग्राम 40 - 42 मील दूर है। जैन शास्त्रों में वर्णित अन्य स्थान भी आस - पास ही है।

सराक क्षेत्र से सम्बन्धित यह लेख मैं लघु रूप में लिखने का प्रयास कर रहा हूँ। विभिन्न लेखकों[8], जैन पुराण एवम् अन्य जैन ग्रन्थों के तथ्यों को अपनी भाषा में लिखने का ही यह प्रयास है। **निश्चित रूप से सराक क्षेत्र ही प्राचीनतम जैन मतावलम्बियों का निवास स्थान है।** भगवान महावीर के अंतिम छः वर्षायोगों की भूमि यहीं पावन स्थली है भगवान महावीर के इस क्षेत्र में बिहार के तथ्य हरिवंश पुराण में उल्लेखित कुछ घटनाओं से स्पष्ट हो जाते हैं। कलिंग देश के राजा जितशर्मा को महावीर के पिता श्री सिद्धार्थ की छोटी बहन यशोधरा ब्याही थी। उनकी पुत्री यशोदा से सिद्धार्थ अपने पुत्र का ब्याह करना चाहते थे, राजा जितशर्मा भी सन्तुष्ट थे किन्तु विवाह से पूर्व ही भगवान महावीर वैराग्य धारण कर ज्ञातृवन को प्रस्थान कर गये। जितशर्मा ने तब भगवान से कलिंग देश में बिहार की प्रार्थना की थी।[9] भगवान का विहार राजगृही से कलिंग देश तक हुआ था।

सिरविहीन जैन प्रतिमा
चौथी शताब्दी ई.पू.
पटना संग्रहालय

बाद में जितशर्मा व उनकी पुत्री ने दीक्षा ली और संभवतः खण्डगिरि के कुमारी पर्वत से अपने जीवन के अंतिम दिन सल्लेखणापूर्ण ढंग से व्यतीत किये। संभव है यशोदा की तपश्चर्या के कारण उनकी कुमारी अवस्था में तपश्चर्यारता हो जाने से पर्वतका नाम कुमारी पर्वत पड़ गया हो। कलिंग देश में ही तोषल नरेश सिद्धार्थ के बन्धु थे। उन्होंने भी भगवान महावीर को अपने राज्य में धर्म प्रचार के लिए आमंत्रित किया था। उनके उपदेश से प्रभावितहोकर तोषल नरेश ने मुनि दीक्षा लेकर इसी कुमारी पर्वत से मोक्ष को प्राप्त किया। भगवान महावीर द्वारा प्रचारित धर्म सदियों तक कलिंग देश के जन मानस में स्थान बनाये रहा। इतिहास की एक अन्य घटना कलिंग जिन की प्रतिमा की है - मगध नरेश महापद्मनन्द इस प्रतिमा को कलिंग विजय कर मगध ले आया था। उसके चार सौ वर्ष पश्चात सम्राट खारवेल ने मौर्य सम्राट वृहस्पतिभिन्न को पराजित कर यह प्रतिमा

कलिंग में पुनः स्थापित की। यह घटना दो बातों को इंगित करती है, प्रथम तो यह कि लगभग चार सौ वर्ष तक कलिंग वासियों के मन में इस प्रतिमा की स्मृति बनी रही।[10] दूसरे जैन मंदिर व मूर्तियों के निर्माण की परम्परा ई.पूर्व 400 वर्ष पहले विद्यमान थी। पटना के पास लोहानीपुर नामक स्थान से प्राप्त अब पटना संग्रहालय में सुरक्षित सिर विहीन जैन प्रतिमाओं के धड़ भी इतिहासकारों ने ई.पू. 400 वर्ष से पहले के माना है।

कलिंग जिन की प्रतिमा अब कहाँ है? डा. बलभद्र जैन इसे जगन्नाथपुरी के प्रसिद्ध मंदिर में कलेवर परिवर्तन की परम्परा में देखते हैं। कलेवर परिवर्तन के समय पुजारी की आँखों पर पट्टी बंधी होती है और पुराने कलेवरों में से मूर्ति निकालकर नये कलेवर में रख दी जाती है[11] पं. बाबूलाल जैन जमादार ने एक अन्य घटना का विवरण इस प्रकार किया है- ''भगवान जगन्नाथ के मुख्यद्वार पर जहाँ से यात्री दर्शन करने अन्दर जाता है एक शीशे से जड़ी अलमारी में वर्षों पुरानी वीतराग भगवान श्री शान्तिनाथ स्वामी की प्रतिमा विराजमान है जिसकी पहचान तत्कालीन पुलिस अधीक्षक रायबहादुर केसरे हिन्द श्री सखीचन्द पध्यान ने की थी। किन्हीं दुष्ट धर्मद्रोही व्यक्तियों ने अभी-अभी (एक दो दिन के भीतर) मूर्ति का लिंग छेदन करके अपनी मदान्धता का परिचय दिया है।'' उन्होंने लिखा है कि कलेवर परिवर्तन के समय हृदय स्थल में भगवान चन्द्रप्रभु की प्रतिमा को रखा जाता है किन्तु काफी खोजबीन करने पर भी इसकी पुष्टि नहीं हो सकी।

यहाँ यह दृष्टव्य है कि भगवान जगन्नाथ की रथ यात्रा आषाढ़ सुदी 2 को होती है जो भगवान आदिनाथ का गर्भ कल्याणक है (कलेवर में प्रतिमा नाभि स्थान पर रखी जाती है), भगवान के 1008 नामों में एक नाम जगन्नाथ भी है। रथ यात्रा महोत्सव हिन्दू समाज में केवल जगन्नाथ भगवान से ही सम्बन्धित है, हिन्दूओं के अन्य पर्वों पर शोभायात्राएँ तो निकाली जाती हैं, भगवान को रथ में बैठाकर रथयात्रा केवल जगन्नाथ भगवान से ही सम्बन्धित है। मेरे एक मित्र जो शेयरों का काम करते हैं, भुवनेश्वर जाते रहते हैं, उन्होंने भी मुझसे कहा था कि पुरी के मंदिर के दक्षिण द्वार की दीवार में शीशे के फ्रेम में एक दिगम्बर प्रतिमा विराजमान है।

मगध नरेश महापद्मनन्द के समय सराक क्षेत्र जैन धर्मावलम्बी था। तदुपरान्त सम्राट चन्द्रगुप्त व बिन्दुसार स्वयं जैन थे। सम्राट चन्द्रगुप्त को अपने साथ लेकर दक्षिण की ओर जाने वाले स्वामी भद्रबाहु कलिंग देश में ताम्रलिप्ति के निवासी थे। आचार्य अर्हद्बली का जन्म स्थान पुण्ड्रवर्धन भी इसी क्षेत्र में माना जाता है। ई. सन् 478 के एक ताम्रपत्र पर वट गोहाली ग्राम में निर्ग्रन्थ श्रमण आचार्य गुह्यन्दि के जैन विहार का वर्णन किया गया है।

स्वाभाविक ही सराक क्षेत्र जैन संस्कृति एक ऐसा प्राचीनतम क्षेत्र है जहां भगवान महावीर के समय से पूर्व से ही और कहीं-कहीं तो भगवान पार्श्वनाथ के समय से ही निरन्तर जैन परम्पराओं का निर्वहन आज तक हो रहा है। यहाँ उपलब्ध कुछ प्रतिमाओं की प्राचीनता भी असन्दिग्ध है। कटक के चन्द्रप्रभ जैन मंदिर में गुप्त काल की प्रतिमाओं के चित्र पं. बलभद्र जैन की पुस्तक में प्रकाशित हैं। भानुपुरा ग्राम की मूर्तियाँ भी समकालीन हैं। पं. बाबूलाल जैन जमादार ने अनाईजामबाद में भूगर्भ से प्राप्त व अन्य प्रतिष्ठित 5 फुट ऊंची भगवान पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा को 2000 वर्ष प्राचीन बताया है। इस गांव के मंदिर में स्थापित दो मूर्तियों के चित्र उपलब्ध हैं जिसमें एक में चौबीसी भी है। केवल चित्रों से यह नहीं कहा जा सकता है कि वे कितनी प्राचीन हैं। स्पष्टतः ही वे सन् 1000 ई. से पूर्व की प्रतीत होती हैं। श्री जमादार ने कटक के दो जैन मंदिरों

का उल्लेख अपनी पुस्तक में किया गया है और उनमें विराजमान कुछ प्रतिमाओं को, जो नदी से प्राप्त हुई थीं, 1800 व 2000 वर्ष प्राचीन बतलाया है। एक अन्य उल्लेखनीय जैन मूर्ति का विवरण मिलता है जो बादुलाडा गाँव थाना उम्दा जिला बाबुदा मे है। यह पार्श्वनाथ भगवान की खड्गासन श्यामवर्ण की प्रतिमा है। यह मंदिर और प्रतिमा पुरातत्व विभाग बंगाल सरकार के अधीन है। पं. बाबूलाल जैन जमादार ने इसे 1800 वर्ष प्राचीन बताया है। सराक क्षेत्र में देश भर की अपेक्षा से अधिक प्राचीन व अधिक संख्या में मूर्तियां मिलती हैं। अनाईजामबाद की मूर्तियों को उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज की प्रेरणा से मंदिर निर्माण कर सुरक्षित कर लिया गया है। पाकवीरा इस क्षेत्र का अन्य महत्वपूर्ण स्थान है। कितनी ही मूर्तियों के सिर काट लिये गये हैं और निश्चित ही अनेक छोटी-बड़ी मूर्तियाँ गायब हो गई होंगी। समाज के लोगों को इस सम्बन्ध में विचार करना चाहिए। हमारी मान्यताऐं क्षेत्र विशेष से जुड़ गई हैं जबकि जैन धर्म से जुड़नी चाहिए। दान देते समय पात्रता का विचार करने के लिए हमारा शास्त्र व मुनिवर्ग बार-बार कहते हैं। निर्माण आदि के लिए किया गया दान यदि सराक क्षेत्र में उपयोगी हो सके तो हमारी संस्कृति का यह वैभव अधिक अक्षुण्ण रह सकेगा। आवश्यकता है एक ऐसे फण्ड की जिसमें न्यूनराशि का निवेश किया जा सके। आवश्यकता है प्रचार की कि यह भूमि कितनी पवित्र है और कितना आवश्यक है यह निश्चित करना कि विस्मृत रह चुका यह क्षेत्र जैन समाज का गौरव है। सम्मेदशिखर की ओर जब तीर्थंकरों ने अपने चरण बढाये होगें तो इसी भूमि पर होकर।

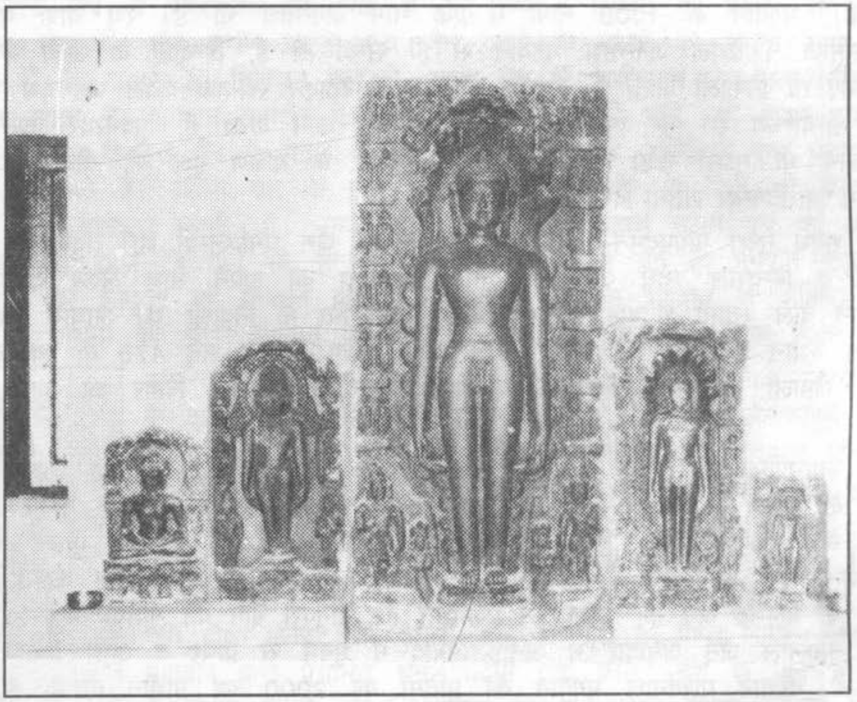

कांसा नदी से प्राप्त अनाइजामबाद (जि. पुरुलिया प. बंगाल) की मूर्तियाँ

हमारे इन संस्कारों को मुसलमानों ने ही विनष्ट नहीं किया अपितु हिन्दू धर्म के मानने वाले कुछ राजाओं ने अपने धर्मान्ध सलाहकारों के प्रभाव में आकर भी यह किया

है। सर्वप्रथम विनाश संभवत: राजा शशांक (600 ई. से 625 ई.) ने किया। पश्चात् राजेन्द्र (चोलवंशी प्रारभिंक ग्यारहवीं शताब्दी) ने सुमात्रा, जावा आदि के अपने विजय अभियान के अन्तर्गत जाते समय व आते समय किया। उसके बाद जैन संस्कृति के अनुकूल वातावरण कभी नहीं रहा। वर्तमान में पंथ निरपेक्ष सरकार द्वारा बनाये जा रहे दामोदर बांध के निर्माण में जो भूमि डूब क्षेत्र में आ गई, वहां हमारी संस्कृति के प्राचीन अवशेष प्रचुर मात्रा में थे। अनेकानेक रूप में धर्म के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने वाले जैन लोगों को अपने इन अवशेषों की रक्षा के लिए सोचना ही चाहिए। शायद दुनिया में कोई भी देश और समाज अपनी संस्कृति के प्रति इतना उदासीन नहीं है जितना हमारा दिगम्बर जैन समाज। पुरातत्व महत्व की सामग्री जैन मंदिरों से रहस्यमय ढंग से गायब होती रहती है। उनके चोरी हो जाने या अन्य प्रकार से नष्ट हो जाने या खण्डित हो जाने की घटनाए अब साधारण बात हो गई है। दिगम्बर - श्वेताम्बरों के झगड़ों व मुकदमों में (राजस्थान में केसरिया जी काण्ड (1919) से आरंभ होकर वर्तमान सम्मेदशिखर विवाद तक) कितना पैसा लगा है जैनों का? आधुनिकीकरण के इस युग में हमनें अपने पञ्चकल्याणकों व अन्य उत्सवों का जो स्वरूप बना लिया है उनमें कितना खर्च अनावश्यक है हमें इन सबका विचार करना चाहिए। हमने अपने विवेक प्रधान धर्म को श्रद्धा और सरलता की भावना में कितना मिथ्यात्वरूप दे दिया है? राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की पंक्तियों में हमारी ही पीड़ा छुपी है।

जिन श्रेष्ठ सौधों पर सुगायक श्रुति थे घोलते।
निशी मध्य टीलों पर उन्हीं के आज उल्लू बोलते॥
सोते रहो रे जैनियों! हम मौज करते हैं यहाँ।
प्राचीन चिन्ह विनष्ट यों किस जाति के होंगे कहाँ॥

सन्दर्भ ग्रंथ -

1. Lt. Col. E. T. Dalton, Journal of Asiatic Society of Bengal, Volume XXXV, Part I, Page 1866, द्वारा सराक ज्योति - अक्टूबर 98, पृ. 20
2. भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, भाग - 2, पं. बलभद्र जैन, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई - 4, 1975
3. प्राच्य जैन सराक शोधकार्य - पं. बाबूलाल जैन जमादार, भा. दि. जैन शास्त्री परिषद, बड़ौत,
4. जैन गजट, 1925
5. डा.स्नेहरानी जैन, भारत के महावीर पूर्वकालीन जैन गुफा मन्दिर, अर्हत् वचन (इन्दौर), **10**(4), अक्टूबर 98, 55 - 62
6. देखें सन्दर्भ - 1
7. तित्थयर (कलकत्ता) (सराक विशेषांक) वर्ष - 22, अंक - 1, अप्रैल 1998, जैन धर्मावलम्बी राढ़ क्षेत्र की सराक जाति, पृ. 23 - 33 एवं भगवान महावीर की सिद्धभूमि, पृ. 107 - 122, विशेष दृष्टव्य पृ. 113
8. सराक क्षेत्र, डा. नीलम जैन, सराक साहित्य संस्थान, दिल्ली, 1996
9. हरिवंशपुराण, आचार्य जिनसेन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1994, 8 / 66
10. देखें सन्दर्भ - 2
11. देखें सन्दर्भ - 1

प्राप्त - 2.11.98

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर का प्रकल्प

सन्दर्भ ग्रन्थालय

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दि महोत्सव वर्ष के सन्दर्भ में 1987 में स्थापित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने एक महत्वपूर्ण प्रकल्प के रूप में भारतीय विद्याओं विशेषत: जैन विद्याओं के अध्येताओं की सुविधा हेतु देश के मध्य में अवस्थित इन्दौर नगर में एक सर्वांगपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थालय की स्थापना का निश्चय किया।

हमारी योजना है कि आधुनिक रीति से दाशमिक पद्धत्ति से वर्गीकृत किये जाने वाले इस पुस्तकालय में जैन विद्या के किसी भी क्षेत्र में कार्य करने वाले अध्येताओं को सभी सम्बद्ध ग्रन्थ / शोध पत्र एक ही स्थल पर उपलब्ध हो जायें। इस क्रम में हमनें ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, **ब्यावर** एवं **उज्जैन** तथा **इन्दौर** के कतिपय शास्त्र भंडारों के सूची - पत्र प्राप्त कर कार्ड बनवा लिये हैं। इसी कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के माध्यम से हम यहाँ जैन विद्याओं से सम्बद्ध विभिन्न विषयों पर हो वाली शोध के सन्दर्भ में समस्त सूचनाएँ अद्यतन उपलब्ध कराना चाहते हैं। इससे जैन विद्याओं के शोध में रूचि रखने वालों को प्रथम चरण में ही हतोत्साहित होने एवं पुनरावृत्ति को रोका जा सकेगा।

केवल इतना ही नहीं, हमारी योजना दुर्लभ पांडुलिपियों की खोज, मूल अथवा उनकी छाया प्रतियों / माइक्रो फिल्मों के संकलन की भी है। इन विचारों को मूर्तरूप देने हेतु दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर पर नवीन पुस्तकालय भवन का निर्माण किया गया है। 31 दिसम्बर 1998 तक पुस्तकालय में 6000 महत्वपूर्ण ग्रन्थों एवं 1000 पांडुलिपियों का संकलन हो चुका है। जिसमें अनेक दुर्लभ ग्रन्थों की फोटो प्रतियाँ भी सम्मिलित हैं। समस्त पुस्तकों के ग्रन्थानुक्रम से इन्डेक्स कार्ड भी बनाये जा चुके हैं। पुस्तकालय के कम्प्यूटरीकरण का कार्य भी प्रगति पर है। हमारे पुस्तकालय में लगभग अनेकों पत्र - पत्रिकाएँ भी नियमित रूप से आती हैं।

आपसे अनुरोध है कि —

संस्थाओं से :
1. अपनी संस्था के प्रकाशनों की 1 - 1 प्रति पुस्तकालय को प्रेषित करें।
2. अपने शास्त्र भंडार में संग्रहीत अप्रकाशित ग्रन्थों की सूची प्रेषित करने का कष्ट करें।

लेखकों से :
3. अपनी कृतियों (पुस्तकों / लेखों) की सूची प्रेषित करें, जिससे उनको पुस्तकालय में उपलब्ध किया जा सके।
4. जैन विद्या के क्षेत्र में होने वाली नवीनतम शोधों की सूचनाएँ प्रेषित करें।

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम परिसर में ही पुस्तक विक्रय केन्द्र की स्थापना की गई है। सन्दर्भ ग्रंथालय में प्राप्त होने वाली कृतियों को प्रकाशकों के अनुरोध पर बिक्री केन्द्र पर बिक्री की जाने वाली पुस्तकों की नमूना प्रति के रूप में उपयोग किया जा सकेगा। आवश्यकतानुसार नमूना प्रति के आधार पर अधिक प्रतियों के आर्डर दिये जायेंगे।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

31.12.98

वर्ष - 11, अंक - 1, जनवरी 99, 17 - 20

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन संस्कृति की पोषक सराक प्रजाति

■ अभयप्रकाश जैन *

अनेक अधिकारी विदेशी और भारतीय विद्वान जैनमत को प्राचीनतम जीवित धार्मिक परम्परा मानते हैं क्योंकि उसमें आदिम युग में जन्मी प्रकृति वादी, सर्वजीव वादी, पर्यावरण संरक्षण वादी, अहिंसावादी पूर्व मान्यतायें आज भी जीवित रूप से मौजूद हैं। जैन परम्परा निश्चय ही अवैदिक है। ऋषभदेव से महावीर स्वामी तक जो छठी शताब्दी ई.पू. के पूर्व इतिहास पुरुष थे। चौबीस तीर्थंकर मनीषियों ने इस परम्परा का मार्गदर्शन किया। वैदिक कर्मकाण्ड तथा औपनिषदिक ब्रह्मवाद इसे सामान्य रूप से अमान्य है। अस्तित्व के दु:खमय होने की तीव्र एवं त्रासदायी अनुभूति व्यक्तिगत प्रयत्नों द्वारा उससे मुक्ति की संभावना में विश्वास तथा परिकल्पना जैनमत में ही है।

संस्कृति के प्रजातीय उद्गम स्रोतों को समझने के लिये प्रजाति विषयक मूलभूत अवधारणा को समझ लेना आवश्यक है। प्रजाति मानव समुदाय के एक विशिष्ट ऐतिहासिक रूप का द्योतक है जो कि मानवों के एक विशिष्ट सामाजिक संगठन द्वारा निर्मित होता है और उनके सामाजिक अस्तित्व की विशिष्टता को चरितार्थ करता है और विकसित होता है। एक प्रजातीय समुदाय अपने सदस्यों के प्रत्यक्ष सम्बन्धों के माध्यम संरूपाकार ग्रहण करता है। एक प्रजाति का एक भाषा के साथ निकट का सम्बन्ध होता है फलत: भाषा प्रजाति के सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तुन्मुखी लक्षण के रूप में ही नहीं वरन् उसके सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों के प्रतीक के रूप में भी स्थिर रहती है। एक प्रजाति के सदस्यों की सांस्कृतिक एकता अखंडनीय होती है।

सराक प्रजाति एक एकीकृत मानव समूह है जो अपनी एकता को स्वीकार करता है और अन्य जनजातियों, मानव समूहों से अपनी भिन्नता के प्रति जागरूक रहता है। एक प्रजाति के सदस्यों में व्याप्त एकता की ऐसी चेतना सामान्यत: प्रजातीय आत्म चेतना या सारूप्यता कहलाती है। एक प्रजाति की सारूप्यता उसके सदस्यों की जन्मभूमि, मातृभाषा, सांस्कृतिक एवं मानसिक विशिष्टता तथा वंश परम्परा एवं इतिहास से सम्बद्ध सारूप्यता पर आधारित रहती है। इस प्रकार एक प्रजाति को एक ऐसे स्थिर मानव समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका इतिहास एक विशिष्ट भूभाग से सम्बद्ध रहा हो जिसके सदस्य भाषा, संस्कृति, खानपान, मानसिकता की दृष्टि से एक हो और अपनी तद् विषयक एकता तथा अपने जैसे अन्य मानव समूहों से अपनी तरंगतर भिन्नता के प्रति जागरूक हों और जिसका अस्तित्व एक निश्चित नाम संसूचित किया जा सकता हो। सराक प्रजाति भगवान पार्श्वनाथ एवं वर्द्धमान को कुल देवता मानती है।

बिहार सराक बहुल क्षेत्र है जहाँ की शुष्क आबोहवा ने संतों को इस स्थल में विचरण के लिये विशेष रूप से प्रेरित किया है। कारण नमी का अभाव जीवों की बहुलता को रोकता है। जरा सोचिये तो जहाँ संत विचरें, कैसा विवेक प्रधान होगा यह क्षेत्र? छोटे-मोटे जीवों को भी बचाने में कितना प्रयत्नशील? यहाँ जैन श्रावकों का सदैव वर्चस्व रहा है तभी तो तीर्थंकरों, आचार्य, उपाध्याय, मुनियों ने यहाँ सदैव बहुलता से विहार/विचरण किया है। सराक शब्द श्रावक का बिगड़ा हुआ रूप है।

सराक जाति के लोग ब्राह्ममुहूर्त में उठते हैं, चारपाई से उठते समय णमोकार मंत्र जपते हैं और चारपाई उठाकर खड़ी कर देते हैं। चारपाई बिस्तर भी बिन बिछे नहीं रहती। सर्वप्रथम पानी

* एन - 14, चेतकपुरी, ग्वालियर - 474 009

2 छन्नों में छानना एक विशिष्ट कार्य था। पानी के बासी मटके को धोकर दूसरे में छान देने के पश्चात् कुए से ताज़ा पानी भरा जाता है। पानी छानने के बाद छन्ने को हौले से एक जलपात्र में उलटकर धोया जाता है, ताकि जीवाणु पुनः जल में आ जायें और वह जल फिर से कुए में डाल दिया जाता है, इसे विच्छन कहते हैं। पीने योग्य पानी को घनौथी पर रखा जाता है, यह ऊपर रखा जाता है तथा सूर्य की किरणों के निरन्तर सम्पर्क में रहें इसका ध्यान रखा जाता है। प्रत्येक बर्तन को ढंककर रखा जाता है। सूर्य की किरणों के सम्पर्क में यह जल ऊर्जावान तथा घातक बैक्टीरिया रहित, प्रासुक हो जाता है। शायद ही विश्व में अन्यत्र कहीं यह प्रक्रिया होती होगी, मात्र जीव दया के लिये। इसके बाद ही महिलाओं का रसोई में प्रवेश होता है।

सराक महिलाओं को वंश परम्परा से ही यह शिक्षा मिली होती है कि चौके में झाडू लगाकर बिना चूल्हे को कपड़े से झाड़कर साफ किये बिना चूल्हा जला देना अमंगल सूचक है। रोज नियमित रूप से चौके की छत , खिडकियों पर से धूल झाड़ देने से 2 उपवास का फल मिलता है ऐसी उनकी धारणा है। जबकि इसकी गहराई में जीवदया का भाव है। चूल्हे को झाड़ने से रात्रि में आ बैठे सूक्ष्म जीव उसके जलने से पूर्व ही सुरक्षापूर्वक निकल जायें और छत दीवालों पर जाले आदि न जमने पायें ताकि जीवों के घात का अवसर ही उपस्थित न हो। गांवों में चूल्हे की छत पर चंदोबा लगाने का भी रिवाज है जिससे खपरैल, मिट्टी की छत, लकड़ी की कड़ी की छत से रेंगता कोई सूक्ष्म या बड़ा जीव चूल्हे पर उबलते पदार्थ में न गिर जाये या अपने मुख का विष या लार भोज्य पदार्थ में न गिरा दे। छिपकली और अन्य ऐसे जीव तो प्रायः दीवालों पर घूमते हैं। उनसे बचने का यह सर्वोत्तम विवेकपूर्ण उपाय इनके पास है। चौके में पहनने तथा चौके में प्रयोग किये जाने वाले कपड़े रोज धोकर खुली धूप में सुखाये जाते हैं।

सराक क्षेत्र उड़ीसा, बिहार में कहीं-कहीं जलाभाव भी है इसलिये राख में सूखे बर्तन मांजने का प्रचलन है किन्तु बर्तनों को मांजने से पूर्व उसमें लगा अन्नांश पानी से धोकर घर के बाहर बनी कुण्डी में डाल दिया जाता है जिसे गाय बैल चलते फिरते पी जाते हैं। वैसे तो राख में मंजे बर्तनों को कपड़े से रगड़कर साफ कर लिया जाता है फिर भी खाना बनाने के बर्तनों को फिर से स्वच्छ जल से धोकर काम में लेने और धोवन को एक पात्र में अलग रख दिया जाता है। दूज, पंचमी, अष्टमी, ग्यारस, चतुर्दशी आदि तिथियों को हरी तरकारी चौके में नहीं बनती है। जमींकन्द, आलू, शकरकन्द आदि भी कुछ लोग अपने घरों में नहीं बनाते हैं। जो आलू खाते हैं वे होली से दिवाली के बीच खाते हैं। वृक्षों पर पहले आये फलों को देवालय में चढ़ाते हैं, उन्हें नहीं खाते। बाइस अभक्ष्यों में द्विदल भी प्रधान है। द्विदल अर्थात् वह अन्न जिसके दलने पर समान दो टुकड़े हो जायें जेसे अरहर, मूंग, चना इत्यादि। कहते हैं इसका कच्चे दही के साथ उपयोग अभक्ष्य होता है अर्थात् जब कढ़ी में या दहीबड़ों में दही डाला जाता है तो गरम करके डालने की प्रथा है ताकि अभक्ष्य न हो जाये। तरकारी के लिये भिगोये गये चना, राजवां, मोंठ, मटर रात्रि के बारह बजे के बाद भिगोये जाते हैं ताकि अंकुरित होकर अभक्ष्य न हो जाये। रसोई बनाते समय या बाद में खाद्य वस्तुओं को ढंककर रखना तो एक प्रधान कर्तव्य माना जाता है। भूलवश यदि रात्रि में कोई खाद्य वस्तु (रांधी हुई) उघाड़ी रह जाती है तो उसे पशुओं के खाने के लिये डाल दिया जाता है। सुबह का बना खाना शाम को तो सराक समाज प्रयोग में लाते हैं किन्तु बासी भोजन का निषेध अभी भी है। बचे हुए फुलकों (रोटियों) को तुरन्त तवे पर सेंककर खाखरा बना लिया जाता है ताकि वे फफुन्दी या बैक्टीरिया रहित रह सकें। घर में पापड़ बनाने पर कोई बासी न हो जाये, उन्हें बेल लिया जाता है चाहे रात के बारह ही क्यों न बज जाये। जूठे बर्तनों को शीघ्र ही साफ किया जाता है क्योंकि मुँह के लार थूक के स्पर्श से उनमें एक घडी पश्चात् ही असंख्य संमूर्च्छन जीवों की उत्पत्ति हो जाती है। सराक बुजुर्गों में इसी लिहाज से खाना खाने के पश्चात् थाली धोकर पीने की परम्परा है। जीवदया के विचार से गर्म तवा कभी जमीन पर नहीं रखा जाता, गर्म जल, मांड आदि मोरी/नाली में नहीं डाला जाता है क्योंकि उनसे सूक्ष्म जीवों के जलकर मर जाने का

भय रहता है। कोयले यदि बुझाये जाते हैं तो किसी गमले आदि पात्र को उलटकर उन पर रख दिया जाता था, पानी डालकर बुझाना निषिद्ध था, क्योंकि इससे अग्निकाय और जलकाय जीवों का संघात होता है।

सराक बन्धुओं के घरों में आटा, बेसन आदि अधिकांशत: हर सप्ताह ही पीसने का रिवाज और परम्परा है, किन्तु मिर्च मसाले का व्यवहार 1-2 माह तक चलता है। अवश्य ही इन्हें बड़े यत्न से रखा जाता है। घर की गाय का दूध, दही, घी ही अधिकांशतया काम में लाया जाता है। घी को लोंग डालकर कड़काया जाता है ताकि उसमें जीवोत्पत्ति न हो। इसी भांति चलित रस अर्थात् वस्तु जिसका स्वाद बदल गया हो, काम में नहीं लाई जाती है। कहीं-कहीं तो जीवदया का इतना सूक्ष्म विवेक रखा जाता है कि चाकू, छुरी आदि को तरकारी की टोकरी में नहीं रखा जाता है। मान्यता है कि आखिर वनस्पति जीव है और उसके अवचेतन में छुरी के प्रति एक अज्ञात भय है। ऐसे अनाज जिनमें लट, इल्लियाँ आदि पैदा हो गई हों उन्हें धूप में डालकर छांव में फैलाया जाता है ताकि बिना कष्ट के निकल जायें। आचार मुरब्बे भी अधिक अवधि रखे हुए नहीं खाये जाते, फफुन्दी लगे हुए अचार तो फेंक ही दिये जाते हैं।

रसोईघर को वास्तु कला की परम्परा के अनुसार सराक लोग बनाते हैं -

1. ईशान कोण में पानी रखने का स्थान बनाते हैं ताकि दिनभर पात्रों पर पूरी-पूरी धूप रहे और पानी का स्थान सूखा बना रहे, सूक्ष्म जीवों का जमाव न हो सके।
2. रसोईघर दक्षिण-पूर्व या उत्तर-पश्चिम की ओर बनाये जाते हैं, इसके पीछे वैज्ञानिक कारण है। 80% हवायें दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर बहती हैं, जो वायु दुर्गन्ध को मकान से दूर बहा ले जाती हैं। बैक्टीरिया, मच्छर आदि भी हवा के बहाव में आगे चले जाते हैं।
3. रसोईघर के आगे या पीछे एक बरामदा बनाने की प्रथा है, इसका मुँह द्वार उत्तर या दक्षिण पूर्व की ओर रहता है।
4. मकान को चारों ओर से खुला छोड़ते हैं। छोटे मकानों में भी कम से कम दो ओर वातायनी रखी जाती है। खाना बन जाने के पश्चात् आंगन से चौके तक कहीं भी जल नहीं रहने दिया जाता है।

जिस प्रकार हिन्दुओं में **'अतिथि देवो भव'** का आदर्श प्रचलित है, उसी प्रकार जैनियों में **'अतिथि संविभाग'** का है। सराक के घर में किसी अतिथि विशेष कर स्वधर्मी बंधु का आना तो सुखद एवं उल्लासमय होता ही है। चूल्हे पर तवा चढ़ाते ही पहली रोटी कुत्ता, मेहतरानी, परायतनी (सड़क झाड़ने वाली) के लिये बनाई जाती है।

अन्य परम्पराएँ बहुत सात्विक तथा बेजोड़ हैं। बडा सुखद आश्चर्य होता है कि घोर मांसाहारियों, शराबियों के बीच रहकर भी ये सराक अपनी संस्कृति को कैसे बचाये हुए हैं। रसोई की क्रिया पर बहुत विवेक से ध्यान दिया जाता है। स्त्रियाँ बगैर स्नान न भोजन बनाती हैं, न ही परोसती हैं, न ही कोई घर का सदस्य खाना खाता है। स्त्रियाँ रजस्वला होने पर 3 दिन तक भोजन नहीं बनाती और कोई वस्तु नहीं छूती, पेशाब जाने के बाद शुद्धि करती हैं और शौच के उपरान्त स्नान अनिवार्य रूप से करती हैं। स्त्रियाँ जितनी बार भोजनशाला में प्रवेश करेंगी उतनी बार कपड़े बदलती हैं। घर के ज्येष्ठों के उपरान्त स्त्रियाँ भोजन करती हैं। घर से बाहर यात्रा पर जाने वाले सराक भाई पक्का भोजन साथ ले जाते हैं। होटल, रेल, बस का भोजन नहीं करते। मकान के दरवाजे अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा और अष्टान्हिका पर गोबरी से लीपे जाते हैं। सूतक-पातक का पूर्ण ध्यान रखा जाता है। सूतक 10 दिन का और पातक 13 दिन का मानते हैं। सूतक में स्त्री 30 दिन बाद बाहर निकलती है और 42 दिन के बाद भोजन बनाती हैं। पौष माह में तथा चैत्र माह में सीताफल (शरीफा), कद्दू नहीं खाते, माघ माह में लौकी नहीं खाते। साधुओं का भोजन

पुरुष ही बनाते हैं। सराकों में पर्दा प्रथा नहीं है। मट्ठा बिलौने के लिये खड़ी होकर मट्ठा बिलौती हैं, बर्तन को पैर नहीं लगने देती हैं, न ही पानी के बर्तन को पैर लगने देते हैं। अपने नाम के आगे मांझी, मण्डल, लायक, सिंह, गायन, पात्र, वैष्णव, चौधरी लिखते हैं। कुछ लोग आचार्य, सराक, अधिकारी, रंगणी भी लिखते हैं।

सराक जाति के गोत्र चौबीस तीर्थंकरों के नाम पर होते हैं जैसे आदिदेव, शांतिदेव, गौतम, धर्मदेव, सांडिल्य। कुलदेवता भगवान पार्श्वनाथ को मानते हैं। कुछ लोग महावीर भगवान को अपना कुलदेवता मानते हैं। कुछ के गोत्र ऋषभदेव, अनंतदेव, ब्रह्मदेव, पारासर भी मिलते हैं।

रांची, सिंहभूमि जिले में सराक जाति तीन भागों में विभक्त है - **मूल सराक, सिकरिया सराक एवं कड़ासी सराक**। वर्तमान में मूल सराक एवं सिकरिया सराक दो भागों में विभाजित है। यहाँ आज भी सराक जाति के लोग ऋषभदेव स्वामी के बताये हुए मार्ग पर चलकर कृषि का कार्य करते हैं। सराक जाति के लोग सात लाख तक होंगे। बिहार, बंगाल, उड़ीसा में सराक जाति के 400 गांव हैं। रांची के गांव नौडी, तमाड, हूसण्डी, तड़ाई, नवाडीह, हराडीह, देवलटाण, आगसिया, चौपड़ी, चौंमाहाक, पारडीह में सराक बहुलता से रहते हैं, उनमें जैनधर्म के प्रति जागृति दिखाई देती है। उड़ीसा के सराक रंगिया कहलाते हैं जो कटक जिले के 51 गांवों में रहते हैं। पूरे उड़ीसा में 385 गांव हैं। रंगिया ही रंगणी कहलाते हैं। उड़ीसा प्रान्त के कुछ गांव जो कटक और बहरामपुर के पास है रंगणी जाति के जैनों का निवास है ये रुगड़ी, नुआमाटणां, मणियावध, जरियाटणां, वालूबीसी में देखे गये हैं, यह जानकारी डॉ. शचिराउतराय द्वारा कटक से मिली है।

गोत्रों के हिसाब से देखें तो रंगणी जाति की गोत्रावली परवार जाति की गोत्रावली से बहुत कुछ मिलती है -

सराक और रंगणी गोत्र			**धन्धा**	**परिवार गोत्र**
उड़िया -	1.	अनन्त देव	बजाजी	ओछलमूर
	2.	खेमदेव	बजाजी	खोनामूर
	3.	काश्यप देव	बजाजी	कासल्यमूर
	4.	कृष्णदेव		कोछलमूर
बंगाल -				
	1.	आदिदेव		आदिमूर
	2.	अनंतदेव		ओछलमूर
	3.	धर्मदेव		धनामूर
	4.	काश्यपदेव		कासल्यमूर

इसका विशेष परिचय जानने के लिये ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद कृत **'प्राचीन जैन सराक इतिहास'** देखें। यह उड़िया और बंगला भाषा में प्रकाशित है। इससे स्पष्ट होता है कि परवार समाज के कुछ लोग उडीसा और बंगाल प्रान्त में बसे थे। उड़ीसा और बंगाल प्रान्त में जो रंगणी जाति के लोग पाये जाते हैं उनके गोत्र परवार जाति के ही हैं उनसे भिन्न नहीं। इनमें कुलदेवता के रूप में जैन तीर्थंकरों के रूप में जैन तीर्थंकरों के नाम हैं तथा पूजे जाते हैं।

सराक लोगों में धार्मिक जाग्रति के प्रति क्षु. गणेशप्रसाद वर्णी, ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद, पं. बाबूलाल जमादार, श्री बैजनाथ सरावगी, श्री हरकचन्द पांड्या ने सराहनीय कार्य किया है। 1992 से पू. उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी ने जो अलख जगाया उससे सराक समाज में एक अनुपम ज्योति जगी है। उनकी प्रेरणा वरदान सिद्ध हुई है। महाराजश्री का प्रयास एक इतिहास होगा और अन्य गुरुओं के लिये प्रेरणा और अनुकरणीय कार्य होगा।

प्राप्त - 8.10.98

वर्ष - 11, अंक - 1, जनवरी 99, 21 - 28

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

उत्कल के जैन वंशज 'वर्तमान सराक'

■ रामजीत जैन *

आज भारत का जो हिस्सा 'उत्कल' के नाम से प्रख्यात है उसमें जैनियों की संख्या नाम मात्र है, किन्तु एक दिन ऐसा भी था जबकि जैन धर्म उत्कल का राष्ट्रीय एवं लोक धर्म था और महावीर काल से लेकर दूसरी सदी ई. पर्यन्त रहा। उसके उपरान्त महायानी बौद्ध धर्म तथा शैव धर्म का भी प्रवेश हुआ। बौद्ध धर्म वहाँ तीसरी से आठवीं सदी पर्यन्त बना रहा। तदुपरान्त बौद्ध एवं शैव धर्म के विकृत रूप तंत्रयान, वाममार्ग आदि का भी यहाँ प्रचार हुआ। इस समय तक जैन धर्म का यहाँ ह्रास हो चुका था। लेकिन फिर भी इतिहास से पता चलता है कि 12 वीं सदी में राजा उद्योत केसरी के समय जैनाचार्यों और जैन केन्द्रों को विद्यमानता थी। इसके साक्षी यहाँ से प्राप्त शिलालेख हैं। 10 वीं सदी में वैष्णव धर्म का भी प्रवेश हुआ। 12 वीं सदी में भुवनेश्वर जिले के पुरी स्थान में जगन्नाथ की प्रतिष्ठा होने के उपरान्त जगन्नाथ की उपासना ही इस प्रदेश का प्रधान धर्म हो गया। कोणार्क का सूर्य मंदिर सूर्योपासना की विद्यमानता का सूचक है। उड़ीसा गजेटियर के लेखक डब्ल्यू. एच. हन्टर के अनुसार इस देश के आदिमवासियों का धर्म भी जैन धर्म ही था, यहाँ के यवन राज्यों ने भी इसी धर्म को अपनाया। 10 वीं, 11 वीं सदी के उपरान्त यहाँ के जैनों ने द्रुत गति से स्वधर्म छोड़ा। **जो फिर भी अडिग रहे, उनके वंशज सराकों के रूप में आज भी विद्यमान हैं।**

जैन धर्म की ऐतिहासिक भूमिका -

जैन धर्म की सम्पूर्ण जानकारी के लिये उसके अभ्युदय, प्रसार, प्राधान्य, देशीय परम्परा, संस्कृति, भूगोल, इतिहास, भाषा, साहित्य, आदि सम्पूर्ण विषयों का अनुशीलन एवं अनुशीलन के फलस्वरूप उसका वास्तविक रूप प्रकट करना आवश्यक है। अत: उत्कल में जैन धर्म का पर्यावलोचन करने के लिये सबसे पहले उपरोक्त प्रकार से विचार जरूरी है।

कलिङ्ग एक बहुत पुराना देश है। पुराणों तथा धर्मग्रंथों में इसका वर्णन आया है। मिश्र, यूनान, तथा चीनी पर्यटकों के भ्रमण वृतान्त में भी इसका उल्लेख है।

विभिन्न छ: राष्ट्रों के सम्मिश्रण से इस प्राचीन भूखण्ड का निर्माण हुआ है - 1. ओड्रराष्ट्र, 2. कलिंग, 3. कंगोद, 4. उत्कल, 5. दक्षिण कोशल और 6. गंगराडी। ये छ: राष्ट्र कभी एक चक्रवर्ती के अधीन रहते थे तो कभी स्वाधीन हो जाते थे। लेकिन इन राष्ट्रों की संस्कृति और सभ्यता एक थी और एक ही क्रम के अनुसार इनका विकास होता रहता था।

वस्तुत: गंगा से लेकर गोदावरी तक और पूर्वी समुद्र से लेकर दण्डकारण्य तक उत्कल विस्तृत था। कालक्रम से दक्षिण कोशल का कुछ अंश उससे अलग हो गया और शेष का नाम त्रिकलिंग पड़ गया क्योंकि उसमें उत्कल, कंगोद, और कोसल ये तीन देश

* एडवोकेट, टकसाल गली, दानाओली, लश्कर - ग्वालियर (म.प्र.)

सम्मिलित थे। वैदिक साहित्य में कलिंग (वर्तमान उड़ीसा) का कोई उल्लेख नहीं है। महाभारत में उसका वर्णन एक अन्य प्रदेश के रूप में हुआ है। जिसका राजा चित्रांगद था। धर्म सूत्रों में इसे म्लेच्छ देश कहा है और वहाँ जाने वालों को पातकी कहा है। इस प्रकार ब्राह्मण परम्परा में कलिंग देश चिरकाल तक एक अनार्य, अवैदिक देश रहा। बौद्ध ग्रन्थों में कलिंग देश और उसकी राजधानी दन्तपुर के अनेक उल्लेख हैं। जैन साहित्य और अनुश्रुतियाँ में कलिंग देश के अनेक उल्लेख मिलते हैं।

बौद्ध ग्रन्थ 'आर्य मंजु श्री' मूलकल्प ई. 983 में जो तिब्बतीय भाषा में अनूदित हुआ था। उसमें एक अध्याय है, जिसमें ई. 770 के तक के भारतीय राजवंशों का वर्णन है। उसमें ऊँचे साधकों की गिनती में कलिङ्ग के ऋषभ का नाम लिखा गया है। कलिङ्ग के सर्वप्राचीन उपलब्ध पुरातत्वावशेष जैन है और इस देश में प्राचीन काल से ही जैन तीर्थंकरों की मान्यता रही है। **राज्य के इष्टदेव 'कलिंग जिन' कहलाते थे और यह प्रथम तीर्थंकर ऋषभ थे।** महावीर के जन्म के पूर्व भी इस जनपद में 'कलिंग जिन' की प्रतिष्ठा थी।

इक्कीस तीर्थंकरों के बाद महाभारत युग में अरिष्टनेमि का लोगों में बड़ा आदर था। हरिवंश पुराण में लिखा है कि कृष्ण, वसुदेव और आखिर कलिंग के राजा जबरदस्ती प्रभावती को लेने गये। जरासंधु या पांडवों के जमाने में बहुत बड़ी तादाद में जैन दीक्षा ग्रहण करने वाले लोग थे। वनवास काल में अर्जुन ने रामगिरि में जैनमूर्ति का दर्शन किया था। अत: इसमें आश्चर्य नहीं कि महाभारत काल में जैन धर्म का प्रचार हुआ। कारण यह था कि मूलनीति और ब्राह्मण धर्म में ज्यादा फर्क न था और जैनों के धर्मगुरुओं के प्रति हिन्दुओं में श्रद्धा थी। ऋषभदेव को वे अवतार मानते थे। अतएव अरिष्टनेमि द्वारा प्रचारित जैन धर्म आम जनता के लिये एक जागृत धर्ममत के रूप में आर्दृत था और ई.पू. 1400 से लेकर ई.पू. 500 तक आर्यावर्त्त में व्यापक हो गया था। 'हरिवंश' तथा 'महाभारत' में रैवतकगिरि का वर्णन है और यह पर्वत जैनियों का गिरनार तीर्थ है।

ई. पू. 820 में भ. पार्श्वनाथ का आविर्भाव हुआ। उनके पिता अश्वसेन वाराणसी के राजा थे और माँ वामादेवी अवध के राजा प्रसेनजित की कन्या थी। पार्श्वनाथ ने राजघाट छोड़कर तपस्या की और कैवल्य पद प्राप्त होने पर धर्म का प्रचार-प्रसार किया। बंगाल से गुजरात तक उनका धर्म प्रसारित हो गया था। ज्यादातर लोगों ने जैन धर्म दीक्षा ली। उन्होंने सम्मेदशिखर पर निर्वाण लाभ प्राप्त किया। उनके नाम से ही सम्मेदशिखर 'पार्श्वनाथ हिल' नाम से जाना गया। उनके काल में उत्कल में जैन धर्म का प्रचार-प्रसार भी हुआ। खण्डगिरि में अनन्तगुफा की पार्श्वनाथ की मूर्ति के ऊपर एक सांप है। यह उत्कलीय पार्श्वनाथ का एक खास चिन्ह है। महेन्द्र पर्वत की पार्श्वनाथ मूर्ति सहस्त्र सर्पों के फनों से आच्छादित है। तीर्थंकर पार्श्वनाथ का विहार कलिंग देश में हुआ था।

भगवान महावीर ई. पूर्व. 557 में अपने जीवन की 42 साल की उम्र में तीर्थंकर बने थे। जम्भिक नाम के गांव में केवलज्ञान प्राप्त किया। बारह वर्ष तक गंभीर चिंतन और अन्तर्दृष्टि के साथ जीवन व्यतीत करने के पश्चात् उनको ज्ञान लाभ हुआ। भगवान महावीर भी कलिंग देश में पधारे थे और राजधानी कलिंग नगर के निकट कुमारी पर्वत पर उनका समवशरण लगा था। इसकी स्मृति में उक्त स्थान पर स्तूपादि स्मारक बने थे

और मुनियों के निवास के लिये गुफाएँ भी निर्मित हुई थीं जो खारवेल के समय के बहुत पहले से वहाँ विद्यमान थी। इन सब बातों से विदित होता है, जैसा कि प्रो. राखानदास का भी मत है, कि उड़ीसा प्रारंभ से जैन धर्म का प्रमुखगढ़ था। वस्तुत: इस प्रदेश में आर्य सभ्यता और संस्कृति के प्रवेश का श्रेय जैन धर्म को है। एक समय जैन धर्म पश्चिम भारत में भी व्याप्त था, फिर भी मगध, अंग, बंग और कलिंग इस धर्म के मुख्य क्षेत्र थे और मगध और कलिंग के साम्राज्य का धर्म था।

छठीं शताब्दी ई. पूर्व में कलिंग देश पर जितशत्रु नामक राजा का राज्य था जो महावीर के पिता राजा सिद्धार्थ का मित्र और बहनोई था। **इसकी कन्या यशोदा के साथ महावीर के विवाह की बात चली थी किन्तु महावीर ने आजन्म ब्रह्मचारी रहने का दृढ़ निश्चय कर लिया था अत: विवाह न हो सका।** जितशत्रु के वंशजों ने नन्दकाल पर्यन्त इस देश पर निर्वाध शासन दिया।

ई. पू. 4 थी सदी में मगध नरेश महापद्मनन्द ने कलिंग पर आक्रमण किया था और उस राज्य को अपने साम्राज्य का अंग बनाया। वह कलिंग विजय के प्रतीक रूप में 'कलिंग - जिन' प्रतिमा को अपनी राजधानी राजगृह को ले आये थे और अपनी राजधानी पाटलिपुत्र में प्रतिष्ठित करने का लोभ संवरण न कर सका। इसलिये ई. पू. 4 थी सदी में भी कलिंग में जैन धर्म राष्ट्रीय धर्म के रूप में प्रतिष्ठित था ऐसा नि:संदेह कहा जा सकता है।

ई.पू. 3 सरी सदी में अपने राज्य के 8 वें वर्ष में एक भारी सेना लेकर मगध के सम्राट अशोक ने कलिंग पर आक्रमण किया। इस युद्ध में कलिंग के एक लाख आदमी मारे गये, डेढ़ लाख बन्दी किये और बहुत से लोग युद्ध के परिणाम से मारे गये। इस भीषण नरसंहार ने अशोक को विचलित कर दिया, उनकी मनोवृत्ति में भारी परिवर्तन हुआ और वह एक शान्तप्रिय, धर्मात्मा नरेश बना। अशोक ने अपने 13 वीं अनुशासन में स्वीकार किया है कि कलिंग युद्ध में ब्राह्मण तथा श्रमण सम्प्रदाय के लोगों ने दु:ख भोगा था। अशोक ने जिनको श्रमण कहा है वे नि:संदेह जैन थे। एक बात ध्यान देने योग्य है कि कलिंग के भाग्यविपर्यय में अशोक आंसू गिराकर रोते थे यह सही है, मगर नन्दराजा के द्वारा अपहृत 'कलिंग - जिन' प्रतिमा को उन्होंने भी नहीं लौटाया।

लगभग तीसरी शताब्दी ई. पू. के अन्त में मौर्य सम्राट के शासन के अंतिम वर्षों में कलिंग फिर से स्वतंत्र हो गया। खारवेल कलिंग के सिंहासन पर बैठा। यह एक नवीन राज्यवंश 'एल' से सम्बन्धित था जो कलिंग के किसी प्राचीन राज्यवंश की शाखा थी। कुछ विद्वानों के अनुसार क्षेमराज का पुत्र बुद्धिराज था और उसका पुत्र भिक्षुराज खारवेल था, किन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि ये सब खारवेल की ही अपनी उपाधियाँ थी। जो भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि खारवेल के पितामह ने ही इस राज्यवंश की स्थापना की थी और कलिंग को स्वतंत्र किया था। खारवेल के पिता की मृत्यु उनके पिता के जीवन काल में ही हो गई थी। अतएव खारवेल अपने पितामह के पश्चात गद्दी पर बैठा।

नन्दराजा के कलिंग पर अधिकार करने के बाद भी जैन धर्म उत्कल से अन्तर्हित नहीं हुआ था बल्कि विभिन्न राजवंशों की परोक्ष पोषकता के कारण भ. महावीर जिनेन्द्र

की वाणी कलिंग के कोने-कोने में प्रचारित हुई थी। यह एक तथ्य है कि अशोक के समय में और उसके बाद में भी कलिंग जैन धर्म का प्रमुख केन्द्रस्थल था। 'चेति' राजवंश के साहचर्य और संरक्षण से इस धर्म के प्रसारण में विशेष सहायता मिली। जब उत्कल के इतिहास में खारवेल का आविर्भाव हुआ तब जैन धर्म की प्रगति में कोई अवरोध नहीं रहा। खारवेल स्वयं जैन धर्म के उपासक और प्रधान पृष्ठपोषक थे। हाथी गुफा शिलालेख लिपि से प्रमाणित होता है कि नंदराज कलिंग विजय के बाद कलिंग जिन को यहाँ से ले गये थे, खारवेल उसी मूर्ति को अपने राजत्व काल के द्वादशवें वर्ष में अंग और मगध पर अधिकार करके कलिंग लौटाकर लाये थे। इस सुअवसर पर शोभायात्रा निकालने की तैयारी की थी। खारवेल की विराट सैन्यवाहिनी और कलिंग के असंख्य नागरिकों ने उस महोत्सव में योगदान दिया था और कलिंग साम्राज्य के सम्राट ही स्वयं उसके समर्थक एवं उत्सव को सुन्दर रूप से सम्पन्न करने के लिये प्रयत्नशील हुये थे। संगीत और वादियों की ध्वनि समारोह में 'कलिंग-जिन' को पुन: कलिंग में स्थापित किया गया। हाथी गुफा के शिलालेख लिपि से यह स्पष्ट मालूम होता है कि खारवेल और उसके परिवार के सभी लोग जैन धर्मावलम्बी थे। उनकी भक्ति और स्नेह 'कलिंग-जिन' के साथ ओत-प्रोत थी।

खारवेल के समय में खंडगिरि और उदयगिरि में जैन साधुओं के लिये सैकड़ों गुफायें निर्मित हुई थी। खारवेल स्वयं जैन थे इस कारण जैन साधुओं के प्रति उनकी व्यक्तिगत अनुरक्ति थी। सम्राट खारवेल का इतिहास प्रसिद्ध शिलालेख (नीचे देखें) उड़ीसा प्रदेश के पुरी जिले में स्थित भुवनेश्वर से तीन मील की दूरी पर विद्यमान खण्डगिरि पर्वत के उत्तरी भाग पर, जो कि उदयगिरि कहलाता है, पर बने हुए हाथी गुफा नाम के एक विशाल एवं प्राचीन कृत्रिम गुफा मंदिर के मुख एवं छत पर उत्कीर्ण है। 17 पंक्तियों का महत्वपूर्ण

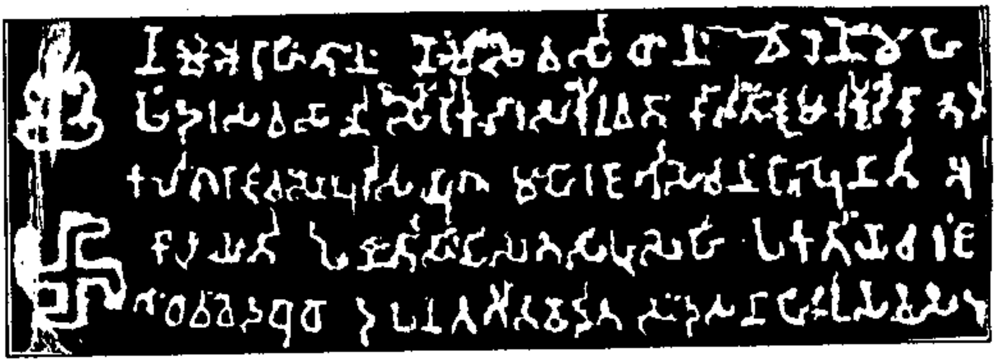

यहाँ मुद्रित शिलालेख विश्व के अत्यन्त महत्वपूर्ण शिलालेखों में से एक है। इसे कलिंग के चेदिवंशीय दिग्विजयी जैन सम्राट खारबेल ने ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी में भुवनेश्वर के पास कुमारी पर्वत पर खुदवाया था, जो हाथीगुम्फा या खारवेल शिलालेख के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह 'ओड्मागधी प्राकृत भाषा' में निबद्ध है तथा इसकी लिपि 'ब्राह्मी लिपि' है। यह इतिहास, भाषा शास्त्र एवं पुरातत्व की दृष्टि से राष्ट्र की अद्वितीय, अमूल्य निधि है। विशेषत: यह जैन समाज के लिये तो सर्वाधिक गौरवप्रद एवं महत्वपूर्ण ऐतिहासिक विरासत है, जो बाईस शताब्दियों के बाद भी आज हमें उपलब्ध है।

लेख 84 वर्गफीट क्षेत्र में लिखा हुआ है। लेख की भाषा प्राकृत तथा जैन प्राकृत मिश्रित अपभ्रंश है। लेख के साथ में मुकुट, स्वस्तिक, नद्यावर्त, अशोक वृक्ष आदि जैन सांस्कृतिक मांगलिक प्रतीक भी उकेरे हुए हैं। इस शिलालेख के प्रारंभ में ही चक्रवर्ती सम्राट खारवेल

ने जैन धर्म के नमस्कार मूलमंत्र को लक्ष्य करके अपनी भक्ति प्रदर्शित की है। शिलालेख की प्रथम पंक्ति में लिखा है - 'नमो अरहंताणं, नमो सवसिधानं'। अरहंतों एवं सर्वसिद्धों को नमस्कार करके चैत्र - (चेति) राज्यवंश की प्रतिष्ठा के प्रसारक, प्रशस्त एवं शुभ लक्षणों से युक्त, चारों दिशाओं विश्व के आधार स्तंभ, अनेक गुणों से विभूषित कलिंग देश के अधिपति एलवंशी (मा आर्य) महाराज महामेघवाहन श्री खारवेल द्वारा यह लेख उत्कीर्ण कराया गया।

हाथी गुफा शिलालेख की पन्द्रहवीं पंक्ति पढ़ने से मालूम होता है कि 'अपने राज्य काल के तेरहवें वर्ष में खारवेल ने जैन सन्यासियों के लियें कुमारी गिरि पर 117 गुफायें निर्मित कराईं थीं, और साथ - साथ दूसरे धर्म के साधु और सन्यासियों के लिये भी (सकल समग - सुविहिता) एक दूसरी गुफा का निर्माण किया था।

तपस्वी मुनियों के निवास के लिये गुफायें बनवायी, स्वयं उपासक (श्रावक) के व्रत ग्रहण किये और अर्हत्मंदिर के निकट उसने एक सुन्दर विशाल सभामण्डप (अर्कासन गुफा) बनवाया जिसके मध्य में एक बहुमूल्य रत्नजटित मानस्तंभ स्थापित किया गया। उक्त सभामण्डप में उसने उन समस्त सुकृत, सुविहित, ज्ञानी, तपस्वी श्रमणों (जैन मुनियों) का सम्मेलन किया जो चारों दिशाओं से दूर - दूर से उसमें सम्मिलित होने के लिए आए थे। इस मुनि सम्मेलन में राजा ने भगवान की दिव्य ध्वनि में उच्चारित उस शान्तिदायी द्वादशांग श्रुत का पाठ कराया, जो कि महावीर संवत् 165 से निरंतर ह्रास को प्राप्त होती (तथा उसके उद्धार का प्रयत्न किया) और इस प्रकार क्षेमराज, वृद्धिराज, भिक्षुराज (राजर्षि) धर्मराज नरेश ने भगवान की उक्त कल्याणकारी वाणी के सम्बंध में प्रश्न करते हुए श्रवण और चिंतवन करते हुए समय बिताया।

विशिष्ट गुणों के कारण दक्ष, समस्त धर्मों का आदर करने वाला, धर्म संस्थाओं का उद्धार, सुधार एवं संस्कार करने वाला, अप्रतिहत- चक्रवाहन (जिसके रथ, ध्वजा, सेना की गति को कोई नहीं रोक सका), साम्राज्यों का सतत् विजयी एवं साम्राज्य संचालक और संरक्षक, राजर्षियों के वंश में उत्पन्न महाविजयी राजचक्री ऐसा राजा खारवेल था।

जैन धर्म को सुप्रतिष्ठित करने के उद्देश्य में तत्पर उनकी कर्मतत्परता, प्रयत्न और दान इतिहास में सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। उनके शासन में जैन धर्म कलिंग में उन्नति के शिखर पर पहुँचा था। मगध से 'कलिंग जिन' का उद्धार करके उन्होंने जातीय धर्म देवता की पुन: संस्थापना की थी।

इसके बाद ही खारवेल के जीवन में परिवर्तन का अध्याय आरंभ हुआ। धीरे - धीरे धर्म का आदर्श उनमें अभिभूत हुआ था। राजत्व के चौदहवें साल में महामेघवाहन सम्राट खारवेल को हमेशा के लिए कलिंग इतिहास से बिदा लेकर अनन्त विस्मृति के गर्भ में लीन होना पड़ा। इसके बाद उनके विषय में जानने के लिये कोई साधन नहीं है।

प्रथम शताब्दी ई. पू. के पूर्वार्द्ध में खारवेल के एक वंशज, वक्रदेव के पुत्र महेन्द्रादित्य गन्धर्व सेना गर्द्दभिल्ल (या खरभिल्ल) ने मालवे के नवस्थापित गणराज्य का नायकत्व प्राप्त करके उज्जैनी में गर्द्दभिल्ल वंश की स्थापना की। गर्द्दभिल्ल के अत्याचारों ने उसे कालकाचार्य के प्रयत्न से शकों द्वारा ई.पू. 61 में च्युत एवं देश से निर्वासित कराया। किन्तु ई.पू. 57 में उसके पराक्रमी पुत्र और विक्रमादित्य ने शकों को मार भगाया और दीर्घकाल तक

न्यायपूर्वक राज्य किया। अपने पूर्वजों के धर्म में विक्रमादित्य की विशेष आस्था रही। एक सौ वर्ष पर्यन्त उज्जैनी पर गर्दभिल्ल वंश का राज्य रहा।

डा. कृष्णस्वामी आयंगर ने दो तमिल ग्रन्थों 'शिलपथीकारम्' एवं 'मणिमेखलायो' में वर्णित कई विवरणों से तत्कालीन कलिंग का परिचय कराया है। उन दोनों ग्रन्थों में कलिंग राजवंश के दो भाइयों के विवाद का वर्णन दिया गया है, इससे मालूम होता है कि कलिंग राज्य उस समय दो खण्डों में विभक्त हुआ था। एक की राजधानी कपिलपुर और दूसरे की सिंहपुर। इन दोनों राज्यों में जो दो भाई राज करते थे। वे खारवेल के वंशधर थे। संभवतया इसी फूट का लाभ उठाकर दक्षिण का सातवाहन नरेश गौतमी पुत्र शातकर्णी कलिंग विजय करने में सफल रहा। दूसरी शती ई. के अन्त में आन्ध्र सातवाहनों का पतन होने पर अयोध्या निवासी तथा इक्ष्वाकुवंशी श्री वीरपुरुषदत्त नामक व्यक्ति ने कलिंग को हस्तगत किया। जैन धर्म तो कलिंग में पहले से प्रचलित था, दूसरी - तीसरी शती ई. में बौद्धाचार्य नागार्जुन द्वारा बौद्धमत का भी इस प्रदेश में प्रसार हुआ। ब्राह्मण धर्म भी धीरे - धीरे प्रविष्ट हो गया। अतः गुप्त काल से ही इस देश में उक्त तीनों धर्मों की प्रवृत्ति साथ - साथ पायी जाती है। समुद्रगुप्त के आक्रमण के फलस्वरूप कुछ काल के लिये कलिंग के कुछ भाग पर वाराणसी से भागे हुए शक - क्षत्रपों का भी राज्य रहा प्रतीत होता है। उसी काल में प्राचीन राज्यवंश के कुछ लोग सिंहल (लंका) में भी जा बसे।

पांचवीं - छठी ई. में कलिंग देश में चार राजवंशों का उदय होना प्रतीत होता है - पहली पूर्वी गंगों का था। कर्णाटक के गंगवंश की एक शाखा ने कलिंग देश में दन्तपुर या श्वेतक को अपनी राजधानी बनाकर पूर्वी गंगवंश की स्थापना की थी। अपना गंगा संवत् (प्रारंभ 497 ई.) भी प्रचलित किया था। इस वंश के राजाओं के अभिलेख गंग संवत् 28 से 114 पर्यन्त तक मिलते हैं। इस वंश के नरेशों के मूल कर्णाटक वंश का कुल धर्म जैन धर्म था। अतः ये भी उसके अनुयायी होना स्वाभाविक है। इस वंश के अंतिम राजा की पुत्री का विवाह एक नागवंशी सरदार के साथ होने से यह राज्य नागवंश के अधिकार में चला गया, जो मुसलमानों और फिर मराठों की अधीनता में रहता हुआ 18 वीं शती तक चलता रहा।

दूसरा वंश तोशलि के मौमकरों का था। इस वंश के संस्थापक खारवेल के किसी सामन्त का वंशज रहा प्रतीत होता है। मौर्यकालीन प्राचीन महानगरी तोशलि को ही इस वंश ने अपना केन्द्र बनाया था। कियोंझर राज्य प्रायः इसी प्रदेश में रहा है। इसका शासक मंजीवंशी उड़ीसा के सर्व प्राचीन वंशों में समझा जाता है। संभव है वर्तमान मंजी राजा प्राचीन मौमकरों के वंशज हों। इस राज्य के आनन्दपुर तालुके में उससे 10 मील दूर वन में प्राचीन बस्तियाँ हैं। इनके आस - पास वनों और पहाड़ों में जैन तीर्थकरों एवं देवी - देवताओं की अनगिनत - प्राचीन खण्डित - अखण्डित मूर्तियाँ, विशाल मंदिर, देवायतन, स्मारकों आदि के खण्हर मिले हैं। कुछ मूर्तियों पर ब्राह्मीलिपि में लेख भी उत्कीर्ण है। इससे विदित होता है कि खारवेल के उपरान्त भी मौमकरों के राज्यकाल में गुप्त काल के अन्त तक इस प्रदेश में जैन धर्म फलता फूलता रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि आठवीं शताब्दी से वाममार्ग, शैव और वैष्णवों के बढ़ते प्रभाव ने इस केन्द्र को धीरे - धीरे उजाड़ दिया।

तीसरा वंश कोंगद का शैलोद्भव वंश था। अनुमानतः यह कोई पर्वतीय वंश था। इस वंश का संस्थापक पुलिन्द सेन का पुत्र शैलोद्भव था। इसके वंशजों ने 5 वीं शती

से 8 वीं शती पर्यंत राज किया। ये शैव धर्मानुयायी थे।

चौथा वंश सोमवंश था, इसका सम्बन्ध कलिंग देश के कोसल प्रान्त से था। पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती इसकी दो शाखायें थीं। प्रथम शाखा ने चौथी से छठीं शती पर्यन्त राज्य किया। इस वंश ने बौद्ध धर्म को प्रश्रय दिया। दूसरी शाखा ने 6 ठीं शताब्दी से 12 वीं शताब्दी तक राज्य किया। चीनी यात्री हुएनसांग (629 - 643 ई.) ने भी कलिंग यात्रा की थी। हुएनसांग के समय कोसल और त्रिकलिंग का अधिपति कोई सोमवंशी राजा हिमशीतल है। यह महायानी बौद्ध सम्प्रदाय का अनुयायी था। उसकी राजमहिषी जैन धर्म की भक्त थी। कार्तिक अष्टाह्निका पर्व पर रानी ने जिनेन्द्रोत्सव मनाने का निश्चय किया। किन्तु राजा के बौद्ध गुरु इसमें बाधक हुए। अन्ततः राजा ने निर्णय दिया कि कोई जैनाचार्य बौद्ध विद्वानों को शास्त्रार्थ में हरा देंगे तो जैन रथ निकालने की अनुमति दे दी जावेगी। रानी तथा अन्य जैन बड़े चिंतित हुए। सौभाग्य से इसी समय महाराष्ट्र के दिग्गज जैनाचार्य (आचार्य अकलंक देव) नगर के बाहर उद्यान में आकर ठहरे थे। उन्होंने चुनौती स्वीकार की। छह महीने तक विवाद चला। बौद्ध लोग तारादेवी की सहायता से शास्त्रार्थ कर रहे थे। अकलंकदेव ने घर में स्थापित तारा देवी का विस्फोट किया और बौद्धों को पराजित किया। राजा पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा और उसने जैन धर्म अंगीकार किया। अनेक बौद्धों को निष्काषित होना पड़ा और वे सुदूर पूर्व के भारतीय राज्यों में चले गये। हर्ष को जब यह समाचार मिला वह कलिंग पर सेना के साथ चढ़ आया। हिमशीतल युद्ध में मारा गया। इधर अकलंकदेव ने चालुक्य राजधानी में अपने भक्त चालुक्य सम्राट साइसतुंग को इस वाद का समाचार सुनाया तो प्रसन्न हुआ और हिमशीतल की सहायता को पहुँचा। वह हिमशीतल की रक्षा तो न कर सका, परन्तु हर्ष पराजित होकर वापिस लौट गया। इस प्रकार कोसल राज्य की रक्षा हो गई। ये घटनायें सन् 642 - 44 ई. की हैं। उत्तरवर्ती सोमवंशी शनैः शनैः शैव और वैष्णव धर्म के अनुयायी हो गये। चीनी यात्री के विवरणों तथा पुरातत्व, जैन अनुश्रुतियों से पता चलता है कि 8 वीं शती ई. तक सम्पूर्ण कलिंग देश में जैन धर्म अच्छी दशा में था।

बानपुर - तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की कांस्य मूर्ति (भुवनेश्वर संग्रहालय)

जैन शास्त्रीय विवरण एवं उड़िया के इतिहास और संस्कृति के उद्धरणों से यह स्पष्ट हो गया है कि उड़ीसा के जन - जीवन में जैन धर्म का प्रभाव अत्यन्त प्राचीन काल से रहा है। स्वयं तीर्थंकर ऋषभदेव ने उड़ीसा में आकर धर्म प्रचार किया। जैन धर्म उड़ीसा का राष्ट्र धर्म था। कलिंग के राजा जैनी थे और प्रजा तीर्थंकरों की उपासना करती थी। जैन धर्म का अहिंसा ध्वज पूर्ण रूप में कलिंग में फहराता रहा है। जैन राजाओं और धनिकों ने उड़ीसा की भव्य भूमि को मनोहारी मंदिरों और अद्भुत गुफाओं से सुसज्जित कर दिया। जैन मूर्तियों की वीतरागता ने कलिंग वासियों के ह्दयों पर एक छत्र अधिकार कर लिया था। ऋषभदेव की मूर्ति सारे देश की गौरव निधि बताई गई और 'कलिङ्ग जिन' के नाम से प्रसिद्ध हुई। नन्दराज

जब उसे मगध ले गये तो सम्राट खारवेल उसे वापिस उड़ीसा ले आये। उन्होंने और उनकी रानी और सन्तति ने जैन धर्म हेतु अनेक अपूर्व कार्य किये, जिनकी साक्षी, खंडगिरि - उदयगिरि की गुफायें हैं। वर्द्धमान महावीर ने भी कलिंग में जैन धर्म का प्रचार किया था। प्रसिद्ध जैन तीर्थ कोटिशिला भी उड़ीसा के आंचल में कहीं छिपा है, ऐसी जैनों की मान्यता है।

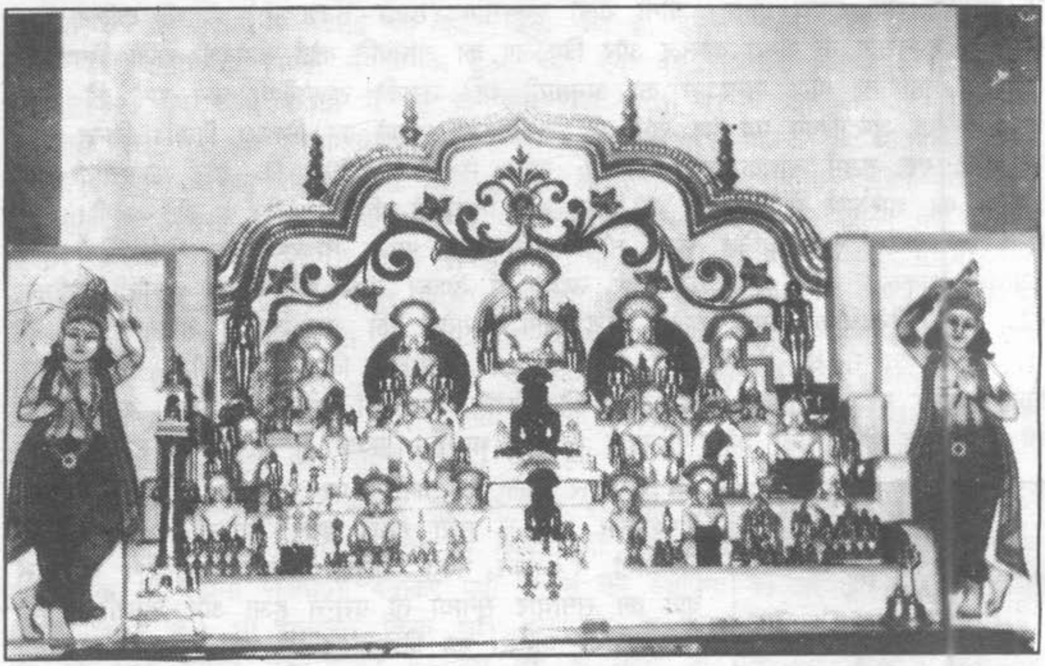

कटक मन्दिर, कटक

यद्यपि वर्तमान में जैन धर्म की स्थिति उड़ीसा में नगण्य है, फिर भी उनकी अहिंसा का प्रभाव जन जीवन में देखने को मिलता है। 'सराक' और 'अलेखी' सम्प्रदाय के लोग नि:संदेह प्राचीन जैन ही हैं। जिस राज्य में जैन धर्म की इतनी गौरवपूर्ण परम्परा रही हो वहाँ के मूल निवासियों में धार्मिक संस्कारों की गहरी पैठ स्वाभाविक ही है। हमें इनका स्थितिकरण करना है और उनके विकास में सहभागी बनना होगा। आज भी खण्डगिरि, उदयगिरि के कारण उत्कल प्रान्त भारतीय जैनों के लिये आकर्षण का केन्द्र है। कटक में आज भी एक मंदिर विद्यमान है, जिसकी कला और मूर्तियाँ दर्शनीय है। उड़ीसा वासियों को उन पर गर्व है।

प्राप्त - 16.1.97

वर्ष - 11, अंक - 1, जनवरी 99, 29 - 30

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

सराक जाति की विशेषताएं

□ कस्तूरचंद कासलीवाल*

स्व. डा. कस्तूरचंद कासलीवाल जैन समाज के ऐसे मनीषी विद्वान थे जिन्होंने प्राचीन पांडुलिपियों की खोज, संरक्षण अनुवाद एवं समालोचनात्मक अध्ययन को पूरा जीवन समर्पित कर दिया। राजस्थानी एवं हिन्दी साहित्य, जैन समाज, जैन जातियों एवं तीर्थों के इतिहास पर लिखी आपकी 35 से अधिक मौलिक कृतियों के अतिरिक्त आपने 200 से अधिक लेख लिखे एवं 20 से अधिक अभिनन्दन। स्मृति ग्रंथों एवं स्मारिकाओं का सम्पादन किया।

8.8.1925 को जन्में डा. कासलीवाल का दुःखद निधन जयपुर में 3.12.98 को हो गया। अर्हत् वचन में प्रकाशनार्थ प्राप्त उनका यह अन्तिम लेख उनको श्रद्धांजलि सहित प्रकाशित है।

■ **सम्पादक**

वर्तमान में बिहार, बंगाल एवं उड़ीसा के सराकों में निम्न विशेषताएं पायी जाती हैं। सभी सराक -

1. शुद्ध शाकाहारी हैं।
2. प्याज, लहसुन आदि अधिकांश व्यक्ति नहीं खाते हैं।
3. अष्ट मूलगुणों का पालन करते हैं।
4. शादी (विवाह) अपने समाज में ही करते हैं।
5. विधवा विवाह एवं विजातीय विवाह का उनमें निषेध है, इस नियम को तोड़ने वालों को जाति से अलग कर दिया जाता है।
6. काटो, काटा, टुकड़े करो आदि हिंसावाचक शब्दों का प्रयोग वे लोग भोजनशाला में नहीं करते हैं।
7. वे सरल स्वभावी हैं, तथा अतिथि सत्कार बड़े ही उत्साह से करते हैं।
8. बिना स्नान किये वे भोजन नहीं बनाते और न ही बिना स्नान किये भोजन करते हैं।
9. शुद्धता की दृष्टि से वे अपनी जाति के अलावा अन्य किसी को रसोई घर में प्रवेश नहीं करने देते एवं उनके परिवार के सदस्य भी अशुद्ध कपड़े एवं बिना स्नान किये रसोई घर में प्रवेश नहीं करते।
10. अपनी जाति के अलावा अन्य किसी को अपने बर्तनों में भोजन कराने पर उन बर्तनों का उपयोग भोजनशाला में नहीं करते। प्रायः अन्य जातियों को भोजन कराने के लिये घर में अलग से बर्तन रखे जाते हैं।
11. सराक बंधुओं के पूर्वज 22 अभक्ष्य के त्यागी थे।
12. शौच के कपड़ों से कोई भी वस्तु नहीं छूते।
13. किसी दूसरों के हाथ से बनी दाल, भात, रोटी आज भी नहीं खाते।

* **अमृत कलश, 867, बरकत कालोनी, टोंक फाटक, जयपुर (राज.)**

14. इनके पूर्वज होटलों में भोजन नहीं करते थे, अगर कोई होटल में या बाहर कहीं अन्य जाति के घर पर अथवा दुकान पर भोजन कर लेता था, तो सराक पंचायत उसे दण्डित करती थीं। दण्डित हुए बिना उसे समाज के कार्य में नहीं बुलाया जाता था। प्रायश्चित होने पर उसकी शुद्धि होती थी।

15. सराक जाति के गोत्र चौबीस तीर्थंकरों के नाम पर हैं, जैसे आदिदेव, शान्तिदेव, अनन्तदेव, गौतम, धर्मदेव, सांडिल्य आदि।

16. इनके टाइटिलों में सराक, मांझी, मण्डल, आचार्य, चौधरी, अधिकारी आदि प्रमुख हैं।

सराक बंधुओं के पूर्वजों के कुलदेवता, देवाधिदेव 1008 श्री पार्श्वनाथ भगवान एवं तीर्थंकर महावीर भगवान थे। भगवान पार्श्वनाथ स्वामी की प्राचीन मूर्ति पुरूलिया (प. बंगाल) जिले के अनाईजामबाद ग्राम में अभी भी सुरक्षित है, जिसकी ऊँचाई 5 फीट है और जिसके आस - पास सराक बन्धुओं का अभी निवास है। इसी प्रकार बांकुडा (प. बंगाल) जिले के बाहुलाडा ग्राम में लगभग 1200 वर्ष प्राचीन भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा सुरक्षित है, जो कि मनोज्ञ एवं सबको आकर्षित करने वाली है। कुछ सराक बंधुओं के घरों में अभी भी जैन मूर्तियां काफी मात्रा में प्राप्त हो रही है।

इन सराकों के पूर्वजों की संकटकालीन स्थिति का जीता - जागता उदाहरण हमारी आँखों के सम्मुख है। पाकिस्तान में हिन्दुओं की तथा जैनों की क्या दुर्दशा हुई? उन्हें तरह - तरह की यातनायें सहनी पड़ी। उन्होंने अस्थिर एवं चंचल व्यवस्था में वर्षों व्यतीत किये हैं जिस कारण से जिन मंदिर, धार्मिक ग्रन्थ आदि से उन्हें विमुख होना पड़ा तथा बाद में गुरुओं का समागम भी उन्हें न हो सका।

सराक बन्धुओं के पूर्वजों की पंचायत - शासन व्यवस्था बहुत ही सुगठित थी। उन सभी का किसी भी कोर्ट (न्यायालय) में मुकदमा नहीं जाता था। वे अपने झगड़ों को अपनी - अपनी पंचायतों में ही सुलझा लेते थे। सराक बन्धुओं के पूर्वजों का इतना गौरव था कि कोर्ट में इनकी गवाही प्रामाणिक मानी जाती थी। उपरोक्त बातों से सिद्ध होता है कि वे सत्यवादी, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं अहिंसा के सच्चे पुजारी थे।

इनके पूर्वज श्रद्धापूर्वक जिनेन्द्र प्रभु की उपासना - पूजा आदि करते थे तथा उनके बताये हुए मार्ग पर चलते थे। किन्तु समय के फेर से ये लोग धर्म से विमुख हो जाने के कारण अपने पूर्वजों के पूर्व संस्कारों को धीरे - धीरे भूलते जा रहे हैं।

प्राय: सभी सराक बन्धु जानते थे कि उनके पूर्वजों ने अनेक सुन्दर - सुन्दर जैन मंदिरों का निर्माण कराया था। किन्तु धर्मरक्षा हेतु जब उन्हें स्थान परिवर्तन करना पड़ता था तब विरूद्ध मतावलंबी उनके मंदिरों एवं मूर्तियों को नष्ट - भ्रष्ट कर देते थे। धीरे - धीरे नये स्थानों पर बसने के लिये उन्हें वहाँ के राजा या जमींदारों का आश्रय लेना पड़ा। उन्हीं के कहे मुताबिक उन्हें धर्म का पालन भी करना पड़ता था। परिणामस्वरूप सराक बन्धु धर्म से क्रमश: विमुख होते गये। फिर भी, अभी तक सराक जाति के लोग अपने पूर्वकालीन ठोस संस्कारों के कारण शुद्ध शाकाहारी एवं अहिंसक बने हुए हैं। मद्य, मांस आदि का सेवन नहीं करते तथा वे अभी भी पानी छान कर पीते थे एवं कुछ लोग रात्रि भोजन नहीं करते। अधिकांश सराक परिवार णमोकार मंत्र जानते हैं।

प्राप्त - 4.10.98

वर्ष - 11, अंक - 1, जनवरी 99, 31 - 35

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

सराक साहित्य – एक सर्वेक्षण

■ अनुपम जैन*

आधुनिक युग में जैन धर्मावलम्बी सराक एवं अन्य सम्बद्ध आदिवासी जैन बन्धुओं की ओर ध्यान आकृष्ट करने का श्रेय लेफ्टिनेन्ट कर्नल डाल्टन (Lt. Col. Dalton) को जाता है, जिन्होंने 1864 - 65 के मध्य अपने नोट्स में इस जाति की अवस्थिति, रीति - रिवाजों एवं क्षेत्र के पुरावशेषों पर प्रकाश डाला। बाद में ब्र. शीतलप्रसादजी, डॉ. अगरचन्द नाहटा, पं. कैलाशचन्द्र सिद्धान्ताचार्य, पं. बाबूलाल जमादार आदि अनेक लेखकों द्वारा समय - समय पर जनजाग्रति हेतु प्रेरणात्मक लेखन किया जाता रहा। ब्र. शीतलप्रसाद, क्षु. गणेश वर्णी, क्षु. जिनेन्द्र वर्णी, क्षु. मनोहर वर्णी आदि की परोक्ष प्रेरणा एवं बाबू बैजनाथ सरावगी, बाबू शिखरचन्द, श्री हरखचन्द पांड्या आदि महानुभावों के सतत समर्थन / संरक्षण से सराक बन्धुओं से सम्पर्क की यह मशाल जलती रही, किन्तु सराक बन्धुओं से सतत सघन सम्पर्क कर उनके स्थितिकरण एवं उन्हें समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित करने हेतु समन्वित प्रयास **सराकोद्धारक, युवा उपाध्याय पूज्य मुनि श्री ज्ञानसागरजी महाराज** की प्रेरणा से 8वें एवं 9वें दशक में ही मूर्त रूप ले सके हैं। इस प्रक्रिया में विपुल परिणाम में सराक विषयक लेख एवं पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं किन्तु सम्यक जानकारी के अभाव में सक्रिय कार्यकर्ताओं को भी अब तक प्रकाशित अनेक महत्वपूर्ण जानकारियों से वंचित होना पड़ता है। सराक बन्धुओं की सामाजिक / आर्थिक स्थिति उनकी परम्पराओं, प्रतिबद्धताओं एवं पारम्परिक ज्ञान पर व्यवस्थित शोध की नितान्त आवश्यकता है। शोधकों की सुविधा हेतु मैं विभिन्न स्रोतों से प्राप्त जानकारी के आधार पर अब तक प्रकाशित सराक विषयक सामग्री को सूचीबद्ध कर रहा हूँ। मुझे यह देखने को मिला है कि अनेक लेखों में पूर्व प्रकाशित सामग्री को ही प्रस्तुत किया गया है तथापि प्रचार - प्रसार में प्रत्येक लेख / टिप्पणी ने अपनी भूमिका निभायी है, इस कारण मैं प्राप्त समस्त उपलब्ध एवं ज्ञात जानकारी को वर्षानुसार सूचीबद्ध कर रहा हूँ —

1864 : Lt. Col. E. T. Dalton (Commisioner of Chhota Nagpur writes in his notes on a tour in Manubhoom in 1864-65), 'The Saraks (A Sect of the Jains)', Journal Asiatic Society of Bengal, Volume XXXV Part I, P. 1866, हिन्दी अनुवाद - सराक ज्योति (मेरठ), अक्टूबर 1988, पृ. 20 - 21

1923 : 'श्राक (श्रावक) जाति के उद्धार की संभावना', जैन गजट (अजमेर)

1931 : ब्र. शीतलप्रसाद जी के लेख, जैनमित्र (सूरत)

1938 : 'सराक जाति के उद्धार का उपाय', ब्र. शीतलप्रसादजी जैन, जैनमित्र, श्रावण सुदी 2, वी.नि.सं. 2464, पुनर्मुद्रित - **सराकोत्थान प्रेरणा के स्वर, सं. – डॉ. अशोककुमार जैन, आचार्य शान्तिसागर छाणी ग्रन्थमाला, बुढ़ाना (मुज्जफरनगर), 1996** (संक्षेप में सराकोत्थान - 1996)

1949 : 'बंगाल प्रान्त में प्रचार का सुयोग व आवश्यकता', डॉ. अगरचन्द नाहटा, जैन संदेश (मथुरा), 4.8.1949, पुनर्मुद्रित - सराकोत्थान 1996

1954 : 'क्या यह प्राचीन जैन अहिंसा संस्कृति नहीं है?', जैन सन्देश, 17.6.54, पुनर्मुद्रित - सराकोत्थान 1996

: 'प्राचीन जैन समारकों के प्रति जैन समाज की उदासीनता', पं. बाबूराम बजाज, जैन सन्देश, 7.10.54, पुनर्मुद्रित - सराकोत्थान 1996

* सचिव – कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, ज्ञानछाया, डी - 14, सुदामानगर, इन्दौर - 452 009

1955 : 'पचार एवं सरावक : एक परिचय', श्री गुलजारी जैन 'विशारद', जैन सन्देश, 19.2.55, पुनर्मुद्रित - सराकोत्थान 1996

1959 : 'बिहार में जैनधर्म', पी. सी. राय चौधरी, जैन सन्देश, 3.12.59, पुनर्मुद्रित - सराकोत्थान 1996

1960 : 'जैनधर्म प्रचार की सख्त आवश्यकता', जैन सन्देश, 25.2.60, पुनर्मुद्रित - सराकोत्थान 1996

1963 : 'मेरी सराक क्षेत्र यात्रा', क्षु. जिनेन्द्र वर्णी, जैन गजट, 31.1.63, पुनर्मुद्रित - सराकोत्थान 1996

1965 : 'पिछड़े हुए जैन', पं. कैलाशचन्द्र सिद्धान्ताचार्य, जैन सन्देश, सम्पादकीय, 27.5.65, पुनर्मुद्रित - सराकोत्थान 1996

1971 : 'सराकों में धार्मिक पुनर्जागरण', श्री रतनेशकुमार जैन - रांची, जैन गजट, 27.5.71, पुनर्मुद्रित - सराकोत्थान 1996

: 'सराक जाति - एक दृष्टि', पं. बाबूलाल जैन जमादार, जैन गजट, 18.11.71, पुनर्मुद्रित - सराकोत्थान 1996

1973 : 'बिछड़ों को सम्हालें', डा. लालबहादुर शास्त्री, सम्पादकीय, जैन गजट, 10.5.73, पुनर्मुद्रित - सराकोत्थान 1996

: 'सराक जाति', सम्पादकीय, जैन गजट, 19.5.73, पुनर्मुद्रित - सराकोत्थान 1996

: 'सराक बन्धु और उनके प्रति हमारा कर्तव्य', डॉ. रमेशचन्द जैन, जैन गजट, 22.11.73, पुनर्मुद्रित - सराकोत्थान 1996

: **'सराक हृदय', पं. बाबूलाल जैन 'जमादार'**

: **'सराक बन्धुओं के बीच', पं. बाबूलाल जैन जमादार**

: **'श्रावक दर्शन या सराक दर्शन', पं. बाबूलाल जैन जमादार**

: **'जैन संस्कृति के विस्मृत प्रतीक', पं. बाबूलाल जैन जमादार, श्री अहिंसा निकेतन, बेलचम्पा, पृ. 112, मू. रु. 1.00**

: **'प्राच्य जैन सराक शोधकार्य', पं. बाबूलाल जैन जमादार, श्री अहिंसा निकेतन, बेलचम्पा, पृ. 145, मू. रु. 3.00**

: 'सराक जाति का इतिहास', पं. बाबूलाल जैन जमादार, अप्रकाशित, अपूर्ण

1993 : **'सराक बन्धुओं के मध्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज', डॉ. कस्तूरचन्द्र कासलीवाल**

1995 : **'सराक क्षेत्र - प्रगति की राह पर', गजेन्द्र पब्लिकेशन, दिल्ली**

1996 : 'सराक जीवन शैली', **तीर्थंकर (इन्दौर), 25** (9 - 10), सराक अंक, पृ. 9 - 11

: 'मैं सराक हूँ', किरणमयी, तीर्थंकर, **25** (9 - 10), पृ. 9 - 11

: 'सराक : पेड़ों से शकुन - अपशकुन', डॉ. अभयप्रकाश जैन, तीर्थंकर, **25** (9 - 10), पृ. 12

: 'सराक शब्द की अर्थयात्रा', बादल मण्डल, तीर्थंकर, **25** (9 - 10), पृ. 13 - 14

: 'सराक शब्दकोष (शब्द संख्या - 66), तीर्थंकर, **25** (9 - 10), पृ. 15 - 18

: 'क्या हडप्पावासी सराक थे?', डॉ. अभयप्रकाश जैन, तीर्थंकर, **25** (9 - 10), पृ. 19 - 22

: 'सराक : एक विहंगम दृष्टि', डॉ. विश्वनाथ चौधरी, तीर्थंकर, **25** (9 - 10), पृ. 23 - 26

: 'सराक क्रान्ति : वक्त के आइने में', तीर्थंकर, **25** (9 - 10), पृ. 27 - 28

: **'सराक क्षेत्र', डॉ. नीलम जैन, प्रथम संस्करण, सराक साहित्य संस्थान, सहारनपुर, द्वितीय संस्करण, आचार्य शांतिसागर छाणी स्मृति ग्रन्थमाला, बुढ़ाना, 1996, मू. रु. 200.00**

: **'सराक जैन क्षेत्रों का सर्वेक्षण - एक समीक्षात्मक अध्ययन', डॉ. कस्तूरचन्द्र कासलीवाल, आचार्य शांतिसागर छाणी ग्रन्थ माला, द्वितीय संस्करण, बुढ़ाना**

: 'हमारे पूर्वज सराक', ब्र. अतुल, **अर्हत् वचन (इन्दौर), 8** (2), अप्रैल 96, 57 - 60

: 'सराक क्षेत्र में विकीर्ण जैन पुरातत्व', डॉ. नीलम जैन, अर्हत् वचन, **8** (2), अप्रैल 96, 61 - 64

: **'सराक परिचय एवं जीवन शैली', डॉ. रूबी जैन, स्मारिका - सराक विद्वत् संगोष्ठी, दिल्ली, 11 - 13 फरवरी 1996,** (संक्षिप्ततः - स्मारिका), पृ. 14 - 19

: 'सराक जाति के उत्थान के उपाय', डॉ. नन्दलाल जैन, स्मारिका, पृ. 20 - 23

: 'सराक क्षेत्र एक दृष्टि', के. के. जैन, स्मारिका, पृ. 24 - 26

: 'सराक क्षेत्र : नदी - वन - पर्वत का लहराता चंचल - अंचल', स्मारिका, पृ. 27 - 33

: '**सराक** शब्द की निष्पत्ति : एक मन्तव्य', ब्र. राकेश जैन, स्मारिका, पृ. 34 - 36

: 'सराक : एक विहंगम दृष्टि', स्मारिका, पृ. 37 - 38

: 'कलिंग, वंग एवं बिहार सराकों के पिछड़ेपन के कारण', स्मारिका, डॉ. जयकुमार जैन, पृ. 39 - 41

: 'सराक संस्कृति', डॉ. (श्रीमती) सरोज जैन, स्मारिका, पृ. 44 - 56

: 'सराक संस्कृति - एक समीक्षात्मक अध्ययन', डॉ. गोकुलप्रसाद जैन, स्मारिका, पृ. 44 - 56

: 'सराक जाति - ऐतिहासिक पृष्ठभूमि', डॉ. राजमल जैन, स्मारिका, पृ. 57 - 59

: 'सराक लोककला की सांस्कृतिक धरोहर', माधुरी जैन, स्मारिका, पृ. 60 - 73

: 'जैन संस्कृति की पोषक सराक प्रजाति', कांति जैन, स्मारिका, पृ. 74 - 79

: 'सराक क्षेत्र में आर्थिक कार्यक्रम', डॉ. उपश्रेणिक जैन, स्मारिका, पृ. 80 - 85

: सराकोत्थान में पं. बाबूलाल जैन जमादार का योगदान', डॉ. श्रेयांस जैन, स्मारिका, पृ. 86 - 89

: बंगाल के जिनबिम्ब', डॉ. रमेशचन्द जैन, स्मारिका, पृ. 90 - 94

: 'सराक षटपदी', डॉ. कपूरचन्द जैन, स्मारिका, पृ. 95

: सराक एक दृष्टि में, डॉ. विश्वनाथ चौधरी, **जगमग दीपज्योति (अलवर),** जनवरी 96, विशेष परिशिष्ट

: सराक क्षेत्र में, जगमग दीपज्योति, जनवरी 96, विशेष परिशिष्ट

: प्रगति की झलक - पुरुलिया सराक क्षेत्र में किये जा रहे उत्थान कार्य, जगमग दीपज्योति, जनवरी 96, विशेष परिशिष्ट

: बातचीत - डॉ. नेमीचन्द जैन एवं उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी, जगमग दीपज्योति, जनवरी 96

1997 : **'सराक ज्ञानान्जलि काव्य', निहालचन्द सिंघई 'चन्द्रेश', दि, जैन साहित्य संस्कृति संरक्षण समिति, दिल्ली**

: 'Sarak Tribal Folk Therapy - The Art of Healing', Dr. Abhai Prakash Jain, **Arhat Vacana (Indore), 9** (4), Oct. 97, 39 - 46

1998 : 'सराक जाति का इतिहास', **तित्थयर (कलकत्ता), 22** (1), अप्रैल 98, पृ.

15 - 22

: 'जैन धर्मावलम्बी राढ़ क्षेत्र की सराक जाति', श्री हरिप्रसाद तिवारी एवं श्री नृसिंहप्रसाद तिवारी, तित्थयर, **22** (1), अप्रैल 98, पृ. 23 - 33

: 'सीमान्त बंगाल की सराक संस्कृति', श्री युधिष्ठिर मांजी, तित्थयर, **22** (1), अप्रैल 98, पृ. 34 - 48

: 'जैनधर्म के पृष्ठ - पोषक राजा पुण्ड्र और उनकी राजधानी', श्री हरिप्रसाद तिवारी एवं श्री नृसिंहप्रसाद तिवारी, तित्थयर, **22** (1), अप्रैल 98, पृ. 56 - 62

: उड़ीसा की सराक संस्कृति', श्री युधिष्ठिर मांजी, तित्थयर, **22** (1), अप्रैल 98, पृ. 63 - 74

: 'निर्ग्रन्थ दर्शन और उसका पीठस्थान गिरिव्रज राजगृह के अस्तित्व में ऋग्वेद', श्री हरिप्रसाद तिवारी एवं नृसिंहप्रसाद तिवारी, तित्थयर, **22** (1), अप्रैल 98, पृ. 75 - 87

: 'बंगाल सीमान्त पर बसा सराक सम्प्रदाय' श्री श्यामचन्द मुखोपाध्याय, तित्थयर, **22** (1), अप्रैल 98, पृ. 88 - 100

: बिहार सीमान्त की प्राचीनतम सराक संस्कृति', श्री युधिष्ठिर मांजी, तित्थयर, **22** (1), अप्रैल 98, पृ. 101 - 106

: 'भगवान महावीर की सिद्धभूमि और तत्संलग्न अंचल', श्री हरिप्रसाद तिवारी और श्री नृसिंहप्रसाद तिवारी, तित्थयर, **22** (1), अप्रैल 98, पृ. 107 - 122

: 'बंगाल में जैन युग की स्मृति', श्री गोपीकृष्ण बसु, तित्थयर, **22** (1), अप्रैल 98, पृ. 122 - 130

: 'तेलकूपी में सराक और ब्राह्मण संस्कृति की मिश्र रूपरेखा', श्री युधिष्ठिर मांजी, तित्थयर, **22** (1), अप्रैल 98, पृ. 131 - 136

: 'देउलघाटा के दीवाल चित्र और सराक संस्कृति', श्री युधिष्ठिर मांजी, तित्थयर, **22** (1), अप्रैल 98, पृ. 137 - 143

: 'प्राचीनतम सराक संस्कृति का निदर्शन पाड़ा का मन्दिर', श्री युधिष्ठिर मांजी, तित्थयर, **22** (1), अप्रैल 98, पृ. 144 - 149

: 'प्राचीन सराक संस्कृति की सुवर्णभूमि पाकविड़रा', श्री युधिष्ठिर मांजी, तित्थयर, **22** (1), अप्रैल 98, पृ. 150 - 157

: 'राढ़ भूमि में जैनधर्म और दुर्गापुर', डॉ. त्रिपुरा बसु, तित्थयर, **22** (1), अप्रैल 98, पृ. 166 - 174

: 'बंगाल के जैन पुरातत्व की शोध में पाँच दिन'', श्री भंवरलाल नाहटा, तित्थयर, **22** (1), अप्रैल 98, पृ. 158 - 165

: 'सराक जाति का स्थितिकरण : संस्कृति संवर्द्धक कार्य', डॉ. नीलम जैन, **इतिहास रत्न डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल अभिनन्दन ग्रन्थ,** जैन विद्या संचयिका, रीवा, 1998, 313 - 323

पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज की प्रेरणा से 1994 में सराक बन्धुओं के इतिहास, संस्कृति एवं सराकोत्थान की गतिविधियों को प्रमुखता से प्रकाशित करने एवं जनजाग्रति हेतु एक पत्रिका के प्रकाशन का निश्चय किया गया। सराक गतिविधियों में रूचि रखने वाले बन्धुओं के लिये यह पत्रिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विगत वर्षों में इसके प्रकाशन स्थलों / नामों में परिवर्तन के कारण शोधार्थी भ्रम में पड़ जाते हैं। हमारे संकलन में उपलब्ध इस पत्रिका के कतिपय अंकों की सूचनायें यहाँ प्रस्तुत है। यदि अन्य अंक भी प्रकाशित हुए हैं, तो उनकी सूचना अगले अंक में परिशिष्ट के रूप में दी जायेंगी।

1.	अ. भा. दि. जैन सराक बुलेटिन, सम्पादक - डॉ. सुशीलकुमार जैन, जैन नर्सिंग होम, कुरावली (मैनपुरी)	वर्ष - 1, अंक 1, नवम्बर 94
2.	,,	वर्ष - 1, अंक 2 - 3, दिस. 94 - जन. 95
3.	,,	वर्ष - 1, अंक 4, फरवरी 95
4.	,,	वर्ष - 1, अंक 5 - 6, मार्च - अप्रैल 95
5.	,,	वर्ष - 1, अंक 7, जून 95
6.	सराक ज्योति, सम्पादक - डॉ. सुशीलकुमार जैन, कुरावली (मैनपुरी)	वर्ष - 1, अंक 8, अगस्त 95
7.	,,	वर्ष - 1, अंक 9, सितम्बर - दिसम्बर 95
8.	सराक ज्योति (अ. भा. दि. जैन सराक ट्रस्ट के अन्तर्गत) सम्पादक - डॉ. सुशीलकुमार जैन, कुरावली	जनवरी 96
9.	,,	फरवरी 96
10.	,,	मार्च 96
11.	,,	मई - जून 96
12.	सराक ज्योति, सम्पादक - डॉ. जयकुमार जैन, 261 / 3, पटेल नगर, मुजफ्फरनगर - 251001	फरवरी - मई 97
13.	,,	जून 97
14.	,,	जूलाई - अगस्त 97
15.	,,	सितम्बर 97
16.	,,	अक्टूबर 97
17.	सराक ज्योति, सम्पादक - सुभाषचन्द्र जैन (प्रवक्ता), 150, ज्ञान सदन, खन्दक बाजार, मेरठ - 2	**5** (6 - 7), जून - जुलाई 98
18.	,,	**5** (8), अगस्त 98
19.	,,	**5** (9), सितम्बर 98
20.	,,	**5** (10), अक्टूबर 98
21.	,,	**5** (11), नवम्बर 98
22.	,,	**5** (12), दिसम्बर 98
23.	,,	**6** (1), जनवरी 99

सराक ज्योति का प्रकाशन निरन्तर जारी है। इसके अतिरिक्त बंगला भाषा में भी एक पत्रिका का प्रकाशन होने की सूचना है।

सराक संहिता (बंगला), सं. श्री दिवाकर मांजी, रूपनारायणपुर बाजार, जि. वर्द्धमान

नोट : सराक बुलेटिन में तो कुछ महत्वपूर्ण सामग्री नहीं है, किन्तु सराक ज्योति के विविध अंकों में सराकोत्थान के प्रयासों की जीवन्त झांकी एवं कई महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित है।

यह सूची अन्तिम नहीं है, उसमें नये नाम निश्चय ही जुड़ सकते हैं। ब्र. शीतलप्रसादजी द्वारा उड़िया एवं बंगाली में सराक जाति का इतिहास लिखे जाने की सूचना है। समाज शास्त्र एवं प्राचीन भारतीय इतिहास की शोध पत्रिकाओं में भी निश्चय ही सराक विषयक सामग्री छपी होगी। बिहार - बंगाल के इतिहास को भी टटोलना होगा। (श्वे.) जैन मुनि श्री सुयश मुनिजी द्वारा भी साहित्य प्रकाशित किये जाने की सूचना है। इन सब स्रोतों से सूचनाओं एवं सामग्री के संकलन का कार्य प्रगति पर है। सभी विद्वानों का सहयोग अपेक्षित है।

प्राप्त - 30.12.98

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार - 98

श्री दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, इन्दौर द्वारा जैन साहित्य के सृजन, अध्ययन, अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के अन्तर्गत रुपये 25,000=00 का कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रतिवर्ष देने का निर्णय 1992 में लिया गया था। इसके अन्तर्गत नगद राशि के अतिरिक्त लेखक को प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिन्ह, शाल, श्रीफल भेंट कर सम्मानित किया जाता है।

पूर्व वर्षों की भांति इस वर्ष 1998 के पुरस्कार हेतु विज्ञान की किसी एक विधा यथा गणित, भौतिकी, रसायन विज्ञान, प्राणि विज्ञान, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि के क्षेत्रों में जैनाचार्यों के योगदान को समग्र रूप में रेखांकित करने वाली 1994-98 के मध्य प्रकाशित अथवा अप्रकाशित हिन्दी / अंग्रेजी में लिखित मौलिक कृतियाँ **28.02.1999** तक सादर आमंत्रित हैं। प्रविष्टियों हेतु निधारित आवेदन पत्र एवं नियमावली कार्यालय से प्राप्त की जा सकती हैं।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

ज्ञानोदय पुरस्कार - 98

श्रीमती शांतादेवी रतनलालजी बोबरा की स्मृति में श्री सूरजमलजी बोबरा, इन्दौर द्वारा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के माध्यम से ज्ञानोदय पुरस्कर की स्थापना 1998 से की गई है। यह सर्वविदित तथ्य है कि दर्शन एवं साहित्य की अपेक्षा इतिहास एवं पुरातत्व के क्षेत्र में मौलिक शोध की मात्रा अल्प रहती है। फलत: यह पुरस्कार जैन इतिहास के क्षेत्र में मौलिक शोध को समर्पित किया गया है। इसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष जैन इतिहास के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र / पुस्तक प्रस्तुत करने वाले विद्वान को रु. 5,001=00 की नगद राशि, प्रशस्ति पत्र, शाल एवं श्रीफल से सम्मानित किया जायेगा।

1994-98 की अवधि में प्रकाशित अथवा अप्रकाशित जैन इतिहास / पुरातत्व विषयक मौलिक शोधपूर्ण लेख / पुस्तक के आमंत्रण की प्रतिक्रिया में 31.12.98 तक हमें 6 प्रविष्ठियाँ प्राप्त हुई। इनका मूल्यांकन **प्रो. सी. के. तिवारी,** से.नि. प्राध्यापक - इतिहास, **प्रो. जे.सी. उपाध्याय,** प्राध्यापक - इतिहास एवं **श्री सूरजमल बोबरा** के त्रिसदस्यीय निर्णायक मंडल द्वारा किया गया। निर्णायक मंडल की अनुशंसा पर **श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल,** अध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने ज्ञानोदय पुरस्कार - 98 की निम्नवत् घोषणा की है -

डॉ. शैलेन्द्र रस्तोगी, पूर्व निदेशक - रामकथा संग्रहालय (उ.प्र. सरकार का संग्रहालय), अयोध्या, निवास - 223 / 10, रस्तोगी टोला, राजा बाजार, लखनऊ। ***जैनधर्म कला प्राण ऋषभदेव और उनके अभिलेखीय साक्ष्य,*** अप्रकाशित पुस्तक।

डॉ. रस्तोगी को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा शीघ्र ही आयोजित होने वाले समारोह में इस पुरस्कार से सम्मानित किया जायेगा। 1999 के पुरस्कार हेतु 1995-99 की अवधि में प्रकाशित / अप्रकाशित मौलिक शोधपूर्ण लेख / पुस्तकें आमंत्रित हैं। प्रस्ताव पत्र का प्रारूप एवं नियमावली कार्यालय से प्राप्त की जा सकती हैं।

डॉ. अनुपम जैन
सचिव - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ

वर्ष - 11, अंक - 1, जनवरी 99, 37 - 44

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

भद्रबाहु : जैन इतिहास का दीपस्तंभ

■ सूरजमल बोबड़ा*

600 से 321 ई. पूर्व के काल पर विचार करें तो लगभग 600 ई. पूर्व तक उत्तरी भारत में प्रजातन्त्रों एवम् राजतंत्रों की स्थापना के साथ भारतीय इतिहास के विवरण अधिक प्रामाणिकता के साथ उपलब्ध होने लगते हैं।

जबकि राजतंत्र गंगा के मैदानों में केन्द्रित थे, प्रजातंत्र इन राज्यों की उत्तरी परिधि के चारों ओर हिमालय की तलहटियों में और उनके कुछ दक्षिण में तथा आधुनिक पंजाब के अंतर्गत उत्तरी - पश्चिमी भारत में बसे हुए थे।

वैदिक कट्टरता के विरूद्ध प्रजातंत्रों के लोगों ने अपनी प्राचीनतर और अनवरत चली आती परम्परा को अक्षुण्ण रखा था। यह अनवरत चली आती परम्परा जन संस्कृति थी जो संभवतः भारत की मूल संस्कृति थी। यदि पूर्णतः इसका अध्ययन हो जाय तो जैन इतिहास की लुप्त धारा तक पहुँचा जा सकता है।

जन संस्कृति के पतन तथा कृषि अर्थव्यवस्था पर बढ़ती निर्भरता से राजतंत्रों के विकास को प्रोत्साहन मिला।

गंगा के मैदान पर प्रभुत्व रखना सामरिक तथा आर्थिक दोनों ही दृष्टि से लाभप्रद था अतः 4 राज्यों में प्रतिद्वंदिता थी। इनमें से तीन काशी, कोसल (काशी के पूर्व में स्थित) और मगध (आधुनिक दक्षिणी बिहार) राजतंत्र थे तथा वृजी (नेपाल में जनकपुर तथा बिहार का मुज्जफ्फर जिला) प्रजातंत्र। लगभग 100 वर्षों तक इनमें युद्ध चलता रहा। मगध अंततः विजयी हुआ। मगध का पहला महत्वपूर्ण राजा बिंबिसार था। छठी शताब्दी ई. पूर्व के उत्तरार्ध में बिंबिसार मगध का राजा बना। कुशल प्रशासन, सीमा व व्यापार का विस्तार, मैत्री और पारिवारिक संबंध स्थापित कर अन्य राज्यों से अच्छे संबंध, खेती विस्तार व कर संग्रह की व्यवस्था ने राज्यकोष को समृद्ध बनाया।

बिंबिसार के पुत्र अजातशत्रु ने, जो मगध पर शासन करने के लिए आतुर था, लगभग 493 ई. पूर्व में अपने पिता की हत्या कर दी और राजा बन गया। अजातशत्रु ने राजगृह को सुदृढ़ किया और गंगा के पार्श्व में पाटलिग्राम नामक एक छोटे से दुर्ग का निर्माण कराया। आगे चलकर यह मौर्यों की सुप्रसिद्ध राजधानी पाटलीपुत्र बना।

मगध की विजय, राजतंत्री पद्धति की विजय थी जो अब गांगेय प्रदेश में दृढ़ता से स्थापित हो गई थी।

461 ई. पूर्व में अजातशत्रु का देहांत हो गया। उसके पश्चात पाँच राजा सिंहासन पर बैठे और सब पितृहंता थे। इससे मगध की प्रजा अत्यन्त क्षुब्ध हो गई और उन्होंने 5 वें राजा को 413 ई. पूर्व में राज्यच्युत करके एक राज्यपाल शिशुनाग को राजा नियुक्त किया। शिशुनागवंश ने केवल आधी शताब्दी तक ही राज्य किया था कि महापद्मनंद ने राज्य पर अधिकार कर लिया।

भारतीय इतिहास के निर्माण में मगध, विशेषतया उसके नन्द राजाओं का महत्वपूर्ण

* 9 / 2, स्नेहलतागंज, इन्दौर

स्थान रहा है। उन्होंने भारतीय इतिहास में अविस्मरणीय क्षत्रियेतर विशाल साम्राज्य 'की सर्वप्रथम स्थापना की। नन्द राजाओं की दूसरी विशेषता यह थी कि उन्होंने ब्राह्मण धर्म की सर्वथा उपेक्षा की। नन्दों का राज्य आर्थिक रूप से समृद्ध था। यह विचार प्रसिद्ध इतिहासज्ञ रोमिला थापर ने भारत का इतिहास लिखते समय व्यक्त किये हैं।

जैन संदर्भों के अनुसार विश्व विजय का आकांक्षी यवनराज सिंकदर भारत आक्रमण के समय पंजाब से आगे नहीं बढ़ सका, उसका मूल कारण नंदों की शक्ति का ही प्रभाव था। नंदों द्वारा कलिंग जिन की मूर्ति को, कलिंग विजय के समय पाटलीपुत्र ले जाया गया था। वहाँ वह मूर्ति सुरक्षित रही अर्थात् नंदराजा जैन धर्म पर आस्था रखते थे। नंदों का ब्राह्मण विरोध भी उनके जैन होने की ओर इशारा करता है।

इतिहासकारों ने भगवान महावीर का निर्वाण काल 527 ई. पूर्व माना है। चंद्रगुप्त मौर्य इसके 155 वर्ष बाद अर्थात ई. पूर्व 372 में चाणक्य की सहायता से मगध का अधिपति बना।

चन्द्रगुप्त मौर्य के जन्म के सम्बन्ध में कई विरोधाभासी मत हैं किन्तु कथा सरितसागर, कौटिल्य अर्थशास्त्र एवं बौद्ध साहित्य के आधार पर उन्हें क्षत्रिय माना गया है तथा इसे सुप्रसिद्ध इतिहासकारों ने स्वीकार किया है। चन्द्रगुप्त मौर्य को भारतीय इतिहास का स्तंभ माना जाता है। तिलोयपण्णत्ति के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य ने जिन दीक्षा धारण की थी। जैन शिलालेखीय प्रमाण भी ऐसा ही सिद्ध करते हैं। यह वह समय है जब भद्रबाहु जैन संघ के आचार्य थे। चाणक्य राजनीति व अर्थशास्त्र के मर्मज्ञ के रूप में चन्द्रगुप्त के मार्गदर्शक थे। इस युग ने राजनीति, धर्मनीति व राज्यशक्ति का अद्भुत समन्वय देखा। चन्द्रगुप्त, चाणक्य और भद्रबाहु इन तीनों के समन्वय के परिणाम स्वरूप शक्तियुक्त - चरित्रवान मौर्य साम्राज्य की स्थापना हुई। इसी काल में जैन संगीति भी हुई। इसका उद्देश्य जैन सिद्धान्तों को लिपिबद्ध करना था। यद्यपि जैन सूत्रों के अनुसार चंद्रगुप्त और भद्रबाहु के दक्षिण गमन के कारण ये दोनों ही संगीति में उपस्थित नहीं थे। जैन इतिहास की किसी घटना पर कुछ खोजना अभी भी कठिन कार्य है। किन्तु जैन इतिहास की अंतरधारा केवल राजनीतिज्ञों पर आश्रित नहीं है - वरन् चिंतकों पर अधिक आश्रित हैं। इसलिए अमिट चिंतन के माध्यम से काल की उग आई झाड़ियों में से इसे ढूँढ निकालना संभव है।

यहाँ जैन इतिहास के कई सूत्र छिपे हैं -

करीब - करीब अब यह स्पष्ट होता जा रहा है कि नेमिनाथ - कृष्ण पांडवकाल में श्रमण चिंतन का अस्तित्व था। जैन संदर्भों से तो यही संकेत मिलते हैं कि ऋग्वेद के पूर्व भी श्रमण चिन्तन का अस्तित्व था और बहुत बाद में नेमिनाथ ने उसे जनजीवन में प्रचारित किया। काल के अनुकूल नये आयामों का उद्घाटन किया। हो सकता है जनसंख्या के अनुपात में जैन मतावलम्बी कम हों किन्तु जैन मत की विश्वसनीयता अवश्य थी।

नन्दकाल और मौर्यकाल में बौद्ध धर्म का भी अपना प्रभाव रहा। जैन मत के मानने वालों में बुद्धिजीवी, व्यापारी एवम् हस्तशिल्पकार थे। इसका परिणाम था कि बाहर भले ही नहीं दिखाई दे किन्तु जैन मतावलंबी भारतीय समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा थे। आगे की कई शताब्दियों में मूर्तियों और मंदिरों के प्रतिष्ठाकारक जन साधारण में से लोग थे। यहाँ तक कि वेदों द्वारा प्रतिपादित शूद्र और निम्नजाति के लोगों ने जैन धर्म के

प्रति अपनी अगाध श्रद्धा प्रदर्शित की और आज भी वह अक्षुण्ण है।

पाटलीपुत्र ने 500 ई. पूर्व से 372 ई. पूर्व के 128 वर्ष के काल में शक्ति का अद्भुत विकास देखा। एक छोटा सा दुर्ग विशाल मौर्य साम्राज्य की राजधानी के गौरव में बदलने के पहले नंदों के शक्तिशाली - समृद्ध केन्द्र के रूप में बदल चुका था। अपार संपत्ति और शक्ति पाटलीपुत्र में केन्द्रित हो चुकी थी। चाणक्य और चंद्रगुप्त की व्यावहारिक राजनीति ने नंदों को परास्त कर जब पाटलीपुत्र पर अपना अधिकार बनाया उस समय कैसे युद्ध हुए - इसका विस्तृत अध्ययन अभी शेष है। भद्रबाहु को अपने जैन अनुयाइयों के साथ गांगेय प्रदेश में ही होना चाहिए। चन्द्रगुप्त क्यों भद्रबाहु का इतना भक्त बना कि वह ऐसे शक्तिशाली साम्राज्य को छोड़कर दिगंबरत्व को धारण कर सन्यासी हो गया। वे कौन से कारण थे जिसके कारण चाणक्य और चंद्रगुप्त दोनों ही सत्ता शक्ति से विरक्त होकर तप - त्याग और अपरिग्रह के पथ के राही हो गये।

एक बात पर ध्यान जाता है कि भद्रबाहु चाणक्य और चंद्रगुप्त तीनों ने ही दक्षिणांचल को अपने अंतिम दिनों में जीवन शैली की दृष्टि से अधिक उपयुक्त माना - उसके कुछ कारण निम्न प्रकार हो सकते हैं -

1. मौर्य साम्राज्य के अभ्युदय के साथ कुछ विसंगतियाँ उभरने लगी होंगी। इस विसंगति के आधार में राज्य परिवार की महत्वाकांक्षा, विदेशी राजनयिकों की उपस्थिति और असंतुष्टों की भेदनीति प्रमुख थी।

2. जातिविहीन सोच के समर्थक जैन और बौद्ध धर्मों का काफी प्रचार हो चुका था। ब्राह्मणवाद का भी अस्तित्व था अत: धार्मिक द्वंद बढ़ा होगा। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ऐसे कई प्रकरण हैं जिनसे इस द्वंद के संकेत मिलते हैं। पुराणों में इस द्वंद को खुले रूप में स्वीकार किया गया है। संदर्भों के अध्ययन से लगता है जातिवाद धार्मिक आतंकवाद का रूप लेने लगा था।

3. कुछ अनुश्रुतियों के अनुसार नंदों के वरिष्ठ महामंत्री शगड़ाल (शकटार) को चंद्रगुप्त का महामंत्री बनाया गया था। शकटार के पुत्र स्थूलिभ्रद जैन सुप्रसिद्ध संत थे। अर्थात् चंद्रगुप्त व चाणक्य की आस्था ऐसे लोगों में थी जिनका जैन - धर्म पर विश्वास था। भद्रबाहु से संपर्क ने हो सकता है चन्द्रगुप्त की इन आस्थाओं को अधिक ऊँचाइयाँ दी हो। यह वह संकेत है जो चंद्रगुप्त चाणक्य के सोच को प्रदर्शित करता है। उनके जैन धर्म के प्रति लगाव को प्रदर्शित करता है।

4. इतिहास के संकेत है कि बुद्धिजीवियों, व्यवसाइयों, उद्योगपतियों का महत्व मौर्य चंद्रगुप्त के समय में बहुत अधिक था और यही सब लोग अधिक मात्रा में जैन धर्मावलम्बी थे। भावुक चंद्रगुप्त पर इन सब का प्रभाव पड़ा हो यह संभव है।

5. राज्य विस्तार व संचालन के दौरान निश्चयपूर्वक चंद्रगुप्त और चाणक्य को यह ज्ञान हो गया कि दक्षिण भारत में ऋषभ परम्परा के जैन धर्मावलम्बी बहुतायत में हैं।

6. भौगोलिक कठिनाइयाँ, संचार साधनों की कमी तथा अन्य धर्मों की असहिष्णु व्यवहार के कारण जैन समूह उत्तर व दक्षिण में बंटा हुआ था। आवश्यकता थी किसी ऐसे नेतृत्व की जो जैन संघ को भारत में राष्ट्रीय रूप में स्थापित कर सके। ऐसा लगता

है चंद्रगुप्त व भद्रबाहु ने यही बीड़ा उठाया था और विशाखाचार्य के साथ 11000 साधु संतों ने दक्षिणांचल गमन का निर्णय किया। हो सकता है इस दक्षिण गमन ने उत्तर भारत में जैन समूह को विभाजित किया हो। जैन संगीति की सफलता को संदिग्ध बना दिया हो। राजकीय व चारित्रिक शक्ति को देखते हुए दुर्भिक्ष का भय कितना होगा इसको पुन: मूल्यांकित किया जाना चाहिये। हो सकता है जैन संगीति की तैयारियों के बीच ऐसा कुछ हो गया हो जिससे भद्रबाहु संतुष्ट न हो और उन्होंने दक्षिण गमन का निर्णय ले लिया हो। हो सकता है भद्रबाहु ने प्रस्ताव किया हो कि दक्षिणांचल के जैन साधुओं को इस संगीति में जोड़ा जाय और इस मुद्दे को लेकर विभाजन हो गया हो। यह सब संभावनायें हैं। सत्य को उजागर होना बाकी है किन्तु घटनाओं से संकेत अवश्य मिलता है कि कुछ न घट सकने वाली समस्या अवश्य पैदा हुई होगी। श्रावकों ने तो भद्रबाहु से विनय की थी कि दुष्काल में वे अपने कर्त्तव्यों का पालन करेंगे और वे दक्षिण गमन न करें। पर भद्रबाहु इससे सहमत नहीं हुए, क्यों? इसका उत्तर ढूँढना होगा। क्या चंद्रगुप्त के राज्याश्रय और भद्रबाहु के धार्मिक आश्रय के अभाव में जैन समूह को कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा होगा। समस्त श्वेतांबर और दिगम्बर साहित्य के उस काल के संकेतों को एकत्रित कर - पाटलीपुत्र के इतिहास - सामाजिक व धार्मिक परिस्थिति के साथ उनका जायजा लिया जाय तो कुछ सत्यों पर से पर्दा हट सकता है।

ईसा पूर्व तृतीय शती में भद्रबाहु का चंद्रगुप्त विशाखाचार्य एवम् अन्य 11000 साधु - साध्वियों के साथ दक्षिण बिहार हुआ। इस सत्य को सिद्ध करने के लिये, शिलालेखों, दान पत्रों, इतिहास के शोध ग्रन्थों एवम् पुराणों से बहुत सी सामग्री एकत्रित है। अत: अन्य रूप से सोचने का अब कोई कारण नहीं है।

भद्रबाहु के द्वारा इस विहार का निर्णय लेना कोई साधारण बात नहीं है। यह जैन संघ की अखिल भारतीय एकता को परिभाषित करने का महत्वपूर्ण कदम था। भद्रबाहु स्वयं उत्तर भारत संघ के आचार्य थे तथा दर्शन, ज्ञान व चरित्र के साकार रूप थे।

भद्रबाहु ने ऐसा निर्णय क्यों लिया इसके संदर्भ अब स्पष्ट हो रहे हैं। कुछ को हम क्रम बद्ध करने का प्रयास करते हैं -

1. 'ऋषभ जीवन शैली' जिसे हम 'जैन जीवन शैली' कहते हैं पर उत्तर भारत में गहरा दबाव पैदा हो रहा था।

■ नंदवंश का अन्त और मौर्य साम्राज्य का अभ्युदय हुआ। (321 ई. पूर्व) मौर्य साम्राज्य संभवत: ज्ञात सर्वप्रथम साम्राज्य था। इन दोनों वंशों के जैनावलम्बी होने के प्रभावी संकेत हैं। सत्ता कभी कभी कई अन्तर्विरोधों को जन्म देती है। हो सकता है साधु संतों में ऐसा हो गया हो।

■ उत्तर पश्चिम सीमाओं पर यूनानी हमलों का दबाव पैदा हो गया था। हो सकता है इस कारण वेदावलंबियों का पूर्व की ओर अधिक दबाव बढ़ा हो और वैदिक जीवन शैली और ऋषभ जीवन शैली में अधिक टकराव हो गया हो। महावीर ने अहिंसक संस्कृति को जो विस्तार दिया उस पर बौद्ध और वैदिक दोनों ही धाराओं ने दबाव डाला।

- जनसंख्या का विस्फोट हुआ। विचारों, आस्थाओं और प्रजातियों के मिलन से साधारण जनसमूह के सोच में अन्तर आया।
- संपत्ति, उद्योग एवम् कर प्रणाली के विकास ने आकर्षण और संघर्ष के कई मुद्दे पैदा किये। जैन चिंतन पर भी उसका प्रभाव पड़ा।
- जैन संघ में भी सुविधा और अन्य दबावों के कारण जीवनशैली में परिवर्तन का विचार बढ़ रहा था।
- श्रुत परंपरा ने यद्यपि जैन दर्शन और ज्ञान की धारा को निरंतर प्रवाहित रखा किन्तु उसमें कमी तो आई ही। स्वयं जैन इतिहासकारों ने इसे स्वीकार किया है।
- वैचारिक संघर्ष व ईर्ष्या ने जैन संत चाणक्य का दुःखद अन्त कर दिया था। चन्द्रगुप्त को उन परिस्थितियों का आभास हो गया होगा जिसके तहत चाणक्य को बचाना संभव नहीं रहा होगा। जैन संदर्भों के अनुसार[1] अपना लक्ष्य पूरा कर चाणक्य ने जैन दीक्षा ले ली। वह अपने 500 शिष्यों के साथ गतियोग (पदयात्रा) से दक्षिणा पथ स्थित 'वनवास' स्थान पहुँचा और वहाँ से पश्चिम दिशा में कहाक्रोंचपुर के एक गोकुल नाम के स्थान में वह ससंघ कायोत्सर्ग मुद्रा में बैठ गया।.......सुबन्धु (नन्द नरेश का पूर्व मंत्री और महाक्रोंचपुर का मंत्री) ने बदले की भावना से चाणक्य के चारों और घेराबन्दी कर आग लगवा दी जिससे सभी साधुओं के साथ उसकी मृत्यु हो गई। कर्नाटक प्रान्त का एक भाग वनवास जंनपद के अन्तर्गत था। चाणक्य अपने परवर्तीकाल में जैन विचारों से प्रभावित हो गये थे यह उनके ग्रंथ अर्थशास्त्र के अध्ययन से भी पता लगता है। 'कौटिल्य का राज्य. पुरोहित सत्ता का अनुयायी नहीं है। कारण वह राज्य सत्ता की नींव कमजोर करने वाले ब्राह्मण और ब्राह्मणेत्तर धार्मिक रीति - रिवाजों की न केवल उपेक्षा करके चलता है बल्कि उनका दमन भी करता है।'[2]

2. भद्रबाहु को ज्ञात था कि दक्षिण भारत में 'ऋषभ जीवन शैली' के समर्थक हैं और उन सबको जोड़कर एक सशक्त अखिल भारतीय जैन संघ को सार्थक बनाया जा सकता है।

   - इस जानकारी के आधार पर ही भद्रबाहु ने ससंघ दक्षिण गमन का विचार किया। इतने बड़े समूह को लेकर मित्र प्रदेश में ही जाया जा सकता है।[3]
   - दक्षिणांचल पहुँचने पर मुनिसंघ का ऋषभ जीवन शैली वाले जनसमूह एवम् राज्य प्रमुखों ने हृदय से स्वागत किया। यद्यपि भद्रबाहु को अस्वस्थता के कारण चन्द्रगिरी पर रुक जाना पड़ा किन्तु विशाखाचार्य के नेतृत्व में यह संघ कोला एवम् पांड्य प्रदेश तक गया था। उन प्रदेशों में उन्हें प्राकृतिक गुफाओं में सहजता से पत्थर के बिस्तर व तकिये प्राप्त हुए जो एक परंपरा के सूचक हैं।

पांड्य प्रदेश में तो जैन साधुओं के लिए अपार प्रेम हो गया था। इस सत्य के समर्थन में प्रो. चक्रवर्ती द्वारा दिया गया यह प्रकरण महत्वपूर्ण हैं - 'आठ हजार जैन साधु जो पांड्य प्रदेश में दुर्भिक्ष के कारण आये और ठहरे और जब उन्होंने जाना चाहा तो

इसे पांड्य राजकुमार ने पंसद नहीं किया। अत: एक रात्रि को मुनि संघ ने पांड्य राजधानी से विहार कर दिया - प्रत्येक ने ताड़पत्र पर एक एक दोहा लिखकर पीछे वहीं छोड़ दिया। इन दोहों के संग्रह को 'नलादियार' कहते हैं।' जैन और अजैन आज भी दक्षिण भारत में इस परंपरा को मानते हैं। अर्थात् ईसा से तीन शताब्दी पूर्व भी जैन चिंतन के लिखे जाने का संकेत है। भद्रबाहु के दक्षिण गमन के पूर्व पांड्य प्रदेश में जैन समर्थक राज्य था यह भी सिद्ध होता है। प्रो. चक्रवर्ती ने इस विचार को दोहराया है कि 'जैन धर्म का दक्षिण भारत से परिचय ईसा से 400 वर्ष पूर्व होना चाहिए'। यह आर्यों के दक्षिण भारत में अस्तित्व से पहले का समय है।

- यहाँ इस पर प्रश्न उठता है कि दक्षिण भारत में ऋषभ जीवन शैली कब और कैसे पहुँची जबकि ऋषभदेव का जन्म उत्तरांचल (अयोध्या) में हुआ।

इस बात में कोई मतभेद नहीं कि जैन चिंतन उत्तर भारत से दक्षिण गया किन्तु यह कहना भ्रमपूर्ण है कि जैन चिंतन भद्रबाहु के साथ दक्षिण भारत गया। ऊपर हमने देखा कि भद्रबाहु के पहले दक्षिण भारत में ऋषभ जीवन शैली का अस्तित्व था।

ईसा से चार शताब्दि पूर्व श्रीलंका में जैन चिंतन का अस्तित्व पाया गया। निश्चित रूप से यह कंलिग्य पांड्य क्षेत्र से होकर श्रीलंका पहुँचा होगा या ऋषभ जीवन शैली के अनुयाई 5000 वर्ष पूर्व हड़प्पा मोहनजोदड़ों के क्षेत्र से आर्यों के दबाव के कारण या बाढ के कारण या अन्य किसी भी कारण से अपना वतन छोड़ने के लिये बाध्य हुए हों और वे राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र होते हुए दक्षिण की ओर विस्थापित हो गये हों। साथ ही वे विंध्याचल को पार कर मध्य पूर्व भारत के क्षेत्रों में पहुँच गये हों। हड़प्पा संस्कृति उन्नत कृषि प्रधान संस्कृति थी और दक्षिणांचल के क्षेत्र में ज्ञात इतिहास के आधार पर ऐसी संस्कृति के अस्तित्व का ज्ञान होता है।

संत 'तिरूवल्लुवार' ने - 'तिरुक्कुरल' के पद्यों के माध्यम से पहली शताब्दि में जिस समाज के लिए अपना संदेश दिया वह कृषि प्रधान समाज की लंबी समृद्ध परंपरा का सूचक है। प्रो. चक्रवर्ती, श्री सुब्रह्मण्यम ने गहरी समीक्षा के साथ इसे रेखांकित किया है। उनका मत है कि तिरुवल्लुवार कुन्दकुन्दाचार्य ही थे।

दक्षिणांचल में ऋषभ या ऋषभ परंपरा के तत्कालीन संतों के अस्तित्व का संकेत श्रीमद्भागवत से प्राप्त होता है 'वे (भगवान ऋषभदेव) अपने अन्त:करण में अभेद रूप से स्थित परमात्मा को अभिन्न रूप से देखते हुए, वासनाओं की अनुवृत्ति से छूटकर, लिंगदेह के अभिमान से भी मुक्त हो कर उपराम हो गये। इस प्रकार लिंग देह के अभिमान से मुक्त भगवान ऋषभदेवजी का शरीर योगमाया की वासना से लेकर अभिमाना भास के आश्रय ही इस पृथ्वी तल पर विचरता रहा। वह देववश कोंक, वेंक और दक्षिण आदि के कुटक कर्णाटक के देशों में गया और मुँह में पत्थर का टुकड़ा डाले तथा बाल बिखरे उन्मत्त के समान दिगम्बर रूप से कुटका चल के वन में घूमने लगा। इसी समय बाँसों के घर्षण से प्रबल दावाग्नि धधक उठी और उसने सारे वन को अपनी लाल लपटों में लेकर ऋषभदेवजी के सहित भस्म [6]कर दिया।'

- भद्रबाहु और चाणक्य दोनों ही समकालीन थे। हो सकता है चन्द्रगुप्त के जीवन का पूर्वार्ध चाणक्य के साथ जुड़ा हो और उत्तरार्ध भद्रबाहु के साथ।

चाणक्य का दक्षिण गमन पहले हुआ और भद्रबाहु व चंद्रगुप्त का उसके बाद। संभवत: चाणक्य की दक्षिण यात्रा से प्राप्त संकेतों से भद्रबाहु को दक्षिण में समविचार के ऋषभ जीवन शैली के लोगों का पता लग गया था।

- भद्रबाहु अपनी यात्रा के प्रारंभ में अहिच्छत्र उज्जयनी होते हुए दक्षिणा पथ की ओर बढ़े थे। यदि इस यात्रा मार्ग पर भी ध्यान दिया जाय तो कई अज्ञात सत्य स्पष्ट हो सकते हैं।

भद्रबाहु की यात्रा का मुख्य उद्देश्य उत्तर दक्षिण का दृढ़ जैन संघ बनाना था। चंद्रगुप्त का सहयोग मिल जाने से इस विचार को और अधिक बल मिला होगा। निश्चय रूप से भद्रबाहु का विहार उसी मार्ग से हुआ होगा जहाँ जैन श्रावक होंगे अन्यथा इतने बड़े साधु संघ की देखभाल कैसे होती। इस यात्रा मार्ग को पाटलीपुत्र से लेकर गोमटेश्वर तक भिन्न - भिन्न मार्गों से यदि चिन्हित किया जाय और उन्हें चिन्हित करने में ज्ञात - अज्ञात श्वेताम्बर दिगंबर सभी तीर्थों के सहारे पहचाना जाय तो भद्रबाहु का दक्षिण गमन जैन इतिहास के महत्वपूर्ण पृष्ठों को खोल सकता है। मेरा सोचना ऐसा है कि हम किसी भी जैन संदर्भ को अनदेखा न करें। किसी परंपरा को रूढ़ि कहकर ठुकरा न दें। किसी पुरावे को छोटा न माने। इन सब को आधार बना कर जैन इतिहास को श्रुत से बाहर निकालकर वास्तविक आधार हम दे सकेंगे। शलाका पुरुष, तीर्थ स्थान, पाण्डुलिपियाँ, परंपरायें, तथाकथित धार्मिक मूढ़तायें सभी जीवित लोगों का कार्यकलापों के परिणाम है - हमें उनके साथ अपनी सापेक्षता बढ़ानी होगी।

- ऋषभ जीवन शैली का अस्तित्व दक्षिणांचल में पार्श्वनाथ काल में भी रहा होगा। कुछ तीर्थों की ऐतिहासिकता को यदि अधिक पारदर्शी रूप किया जा सकता तो यह विस्तार पहचाना जा सकता है।

मध्यप्रदेश के दुर्ग शहर से 16 वें कि.मी. पर कलकत्ता मुम्बई राजमार्ग पर जाल बांधा मार्ग से 9वें कि.मी. पर नगपुरा है। यहाँ श्वेताम्बर समाज द्वारा संचालित एक विशाल तीर्थ 'पारस नगर' तेजी से विस्तृत रूप ले रहा है। इस क्षेत्र में मान्यता है कि भगवान पार्श्वनाथ ने इस क्षेत्र में विहार किया था। इस तीर्थ के मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति के प्राप्त होने की भी एक रोचक कथा है। गंडक नदी के उत्तरी तट पर बीहड़ जंगल से घिरा घास फूंस झोपड़ियों वाला ग्राम उगना है। यह क्षेत्र कभी प्रदेशी राजा का था। अक्टूबर 1981 में कुँआ खोदते समय जीवित सर्पों से लिपटी एक अलौकिक प्रतिमा हाथ लगी। यह प्रतिमा पार्श्वनाथ की है। स्वप्न प्रेरित हो कर यह मूर्ति वहाँ से स्थानांतरित करने का काम श्री रावल मल जैन के नेतृत्व में प्रारंभ हुआ। मेटाडोर में मूर्ति ला रहे थे कि नगपुरा के पूर्व नाले के पास मेटाडोर अविचलित रूप से रूक गई अत: जन सम्हूह को वहीं मूर्ति स्थापित करने का निर्णय लेना पड़ा। आज वहां एक विशालकाय तीर्थ आकार ले चुका है। तीर्थ व्यवस्था समिति ने घोषित किया है कि मूर्ति भगवान महावीर के काल की है और इस प्रतिमा की मंगल स्थापना उस समय हुई थी जब महावीर केवल 38 वर्ष के थे तथा पार्श्वनाथ के गणधर आचार्य सुकेशी ने यह कार्य किया था। इस संदर्भ को यदि अधिक पारदर्शी बनाया जा सके तो जैन इतिहास अधिक स्पष्ट हो सकता है।

इसी प्रकार पैठण (महाराष्ट्र) में भगवान मुनिसुव्रतनाथ की मूर्ति है। यह राजा करदूण

द्वारा बालू से बनाई गई थी। आचार्य माघनंदी और शालिवाहन राजा का भी इस क्षेत्र से जुड़ाव हुआ था। खरदूषण का काल रामचन्द्र का काल था और भगवान मुनिसुव्रत के तीर्थ काल में ही रामचन्द्र का काल जैन संदर्भों से ठहरता है। इस बात को अनदेखा करना ठीक नहीं होगा।

भद्रबाहु के दक्षिण गमन के माध्यम से यहाँ कुछ ही संदर्भों संकेतों पर विचार करने का प्रयत्न किया गया है - आशा है भविष्य में शोधार्थी कई नये संदर्भ जैन इतिहास को देंगे।

श्री सुब्रमण्यम ने अपनी पुस्तक 'तिरुवल्लुवार एण्ड हिज तिरुक्कुराल' में[7] पृष्ठ 63 पर स्पष्ट किया है कि उनके नेता भद्रबाहु इस बात को जानते थे कि वहाँ एक उन्नत देश है, मुख्यत: उन लोगों का वहाँ निवास है जो ऋषभ की अहिंसा पर विश्वास रखते हैं तथा उन्हें अपने संघ के लिए लोगों का सहयोग प्राप्त होगा। इस विश्वास के बिना इतने बड़े जैन संघ का दक्षिण गमन समझना कठिन होगा।

इतिहास एवम् संदर्भात्मक पुराणों से यह बिलकुल साफ है कि तमिल जैन आदर्शों से महावीर के समय से परिचित थे।

इस काल में श्रमण चिन्तन का उत्तर से दक्षिण तक तथा पूर्व से पश्चिम तक जो फैलाव नजर आता है उसका श्रेय भद्रबाहु - चन्द्रगुप्त और विशाखाचार्य को जाना चाहिये। तीसरी शताब्दी ई. पूर्व जो पुल भद्रबाहु ने विंध्याचल और सत्पुड़ा को पार कर दक्षिण मुखी बनाया वह समविचारों वाले लोगों को जोड़ने का कार्य था। संभवत: इसी पुनर्गठन का परिणाम था कि दक्षिण ने समंतभद्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य से बहती हुई चरित्र प्रधान मनीषियों, चिंतकों की एक न टूटने वाली लंबी परंपरा जैन संघ को दी।

भद्रबाहु का काल संभावनाओं, परिवर्तन तथा गतिशीलता का अद्भुत उदाहरण है। भद्रबाहु केवल जैनाचरण के मर्मज्ञ नहीं थे बल्कि वे ऐसे शक्तिपुंज थे, जिसने काल के थपेड़ों से बिखरे जैन समूह को एक कड़ी में बांधा। आम्नाय व पद्धति का विभाजन होता रहा है और होता रहेगा - किन्तु 'जैन' चिन्तन के प्रति यदि हम निर्विवाद रूप से जुड़े रहे तो प्राणीमात्र के अस्तित्व को फहराने वाली ऋषभ पताका लहराती रहेगी।

सन्दर्भ स्थल :

1. बृहत कथा कोष, सं. 143, कवि हरिषेण (931 ई.), सिरिचंद कृत कहकोसु, नेमीदत्तकृत आराधना कथा कोष
2. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थायें, पृ. 263
3. प्रो. ए. चक्रवर्ती, 11 - 12 जैन लिटरेचर इन तमिल
4. वही पृ. 13
5. श्रीमद्भागवत, पंचम स्कन्ध, छठा अध्याय
6. बलभद्र जैन, जैन धर्म का प्राचीन इतिहास, पृष्ठ 78
7. श्री सुब्रमण्यम, तिरुवल्लुवार एण्ड हिज तिरुक्कुराल, पृ. 63

प्राप्त - 31.7.98

वर्ष - 11, अंक - 1, जनवरी 99, 45 - 48

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

तीर्थंकर दिव्यध्वनि की भाषा

■ नाथूलाल जैन शास्त्री *

दिव्यध्वनि और प्राणिमात्र में मैत्री आदि 14 अतिशय तीर्थंकर केवली के देवकृत बताये हैं।

आचार्य कुन्दकुन्ददेव कृत 'दर्शन प्राभृत'[1] की संस्कृत टीका में केवलज्ञान के चतुर्दश अतिशयों में उक्त दिव्यध्वनि को सर्वार्द्धमागधी भाषा कहा है। उसके अर्थ में मगधदेव के सन्निधान होने पर तीर्थंकर की वाणी अर्द्ध मगध देश भाषात्मक एवं अर्द्ध सर्वभाषात्मक परिणत होती है।

मैत्री के भाव में वहीं स्पष्टीकरण किया गया है कि समवसरण में सर्व जनसमूह मागध, प्रीतंकर देव कृत अतिशय के कारण मागध भाषा में परस्पर बोलते हैं और मित्ररूप में व्यवहार करते हैं।

'तिलोयपण्णत्ती' आदि के अनुसार तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि तालु, दंत, ओष्ठ के हलन - चलन बिना होती है।

हम पूजा में पढ़ते हैं - **'ओंकार ध्वनि सार द्वादशांगवाणी विमल'**[2]। मूल में केवली के समस्त शरीर से 'ओम्' ध्वनि अनक्षरात्मक शब्द तरंग रूप संप्रेषण द्वारा बिना इच्छा के मेघगर्जना के समान श्रोताओं के कर्ण में प्रवेश करते समय उनकी योग्यतानुसार उनकी भाषा रूप अक्षरात्मक होकर परिवर्तित होती है। इसमें मागध देवों का सन्निधान रहता है जैसा कि उक्त दर्शनप्राभृत टीका में बताया गया है। साथ ही केवली का अतिशय तो है ही। भाषा के प्रसार में देव सहयोग प्रदान करते रहते हैं।

दिव्यध्वनि तीर्थंकर नाम कर्मोदय के कारण कण्ठ, तालु आदि को प्रकंपित किये बिना शब्द वर्गणावे कंपन के साथ ध्वनि होती है जो पौद्गलिक है। काययोग (वचन) से आकृष्ट पुद्गल स्कंध स्वयं शब्द का आकार लेते हैं याने भाषा रूप में परिणमन करते हैं। तीर्थंकर की ध्वनि में ऐसी स्वाभाविक शक्ति होती है जिसमें वह अठारह महाभाषा एवं सात सौ लघुभाषा में परिणत होती है। साथ ही समस्त मनुष्यों, देवों एवं पशु - पक्षियों की संकेतात्मक भाषा में परिवर्तित हो जाती है [3]।

ऊपर जो तीर्थंकर वाणी को अर्द्ध मागधी कहा है, यद्यपि उसमें मगध शब्द का संबंध देवों को बता दिया गया है। साथ ही मगध देश की भाषा का भी उल्लेख किया गया है जिसमें अन्य अठारह देशी भाषाओं का मिश्रण है।

'अड्डारस देशी भाषा नियमं वा अद्धमागहम्'[4] अर्थात् अठारह देशी भाषाओं का मिश्रण अर्द्धमागधी है। आचार्य जिनसेन आदि ने इसे सर्वभाषात्मक कहा है। हमारे यहाँ लिखने का अभिप्राय यह है कि 'अर्हत् वचन' पत्रिका के जुलाई 98 अंक में **'दिगम्बर जैन आगमों के बारे में एक चिन्तन'**[5], एक पठनीय लेख एम. डी. वसन्तराज का प्रकाशित हुआ है जो मूल कन्नड भाषा में लिखित लेख का लेखक द्वारा संप्रेषित हिन्दी अनुवाद है।

* 40, मोती महल, सर हुकमचन्द मार्ग, इन्दौर - 452 001

लेखक बहुश्रुत एवं अध्ययनशील है। इसमें पृष्ठ 41 पर लिखा है कि दिगम्बर परम्परा में आगम को 'शौरसेनी जैनागम' और श्वेताम्बर परम्परा के आगम को 'अर्द्धमागधी' जैनागम नाम हाल ही में कुछ विद्वानों ने दिया है। यह दिगम्बर जैन आम्नाय के विषय में अनर्थकारी प्रभाव करने वाला है। वास्तव में आगम की भाषा को 'आर्षप्राकृत' अर्थात् मुनियों की भाषा कहकर पुकारा जाता था। महावीर स्वामी के उपदेश की भाषा अर्द्धमागधी (प्राकृत) भाषा थी। दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों पंथ वालों ने यह नाम दिया है।

इस उल्लेख से विदित होता है कि लेखक मान रहे हैं कि भगवान महावीर का अर्द्धमागधी में उपदेश हुआ और उसी अर्द्धमागधी में श्वेताम्बर ग्रन्थों का निर्माण हुआ। अत: उनका विशेष महत्व है और दिगम्बर ग्रन्थ उससे भिन्न शौरसेनी भाषा में रचे गये। अत: उनका वैसा महत्व नहीं रहा। यही लेखक के अनुसार अनर्थकारी प्रभाव हो सकता है। इसके अतिरिक्त प्रामाणिकता - अप्रामाणिकता में भी अनर्थ माना जा सकता है। यह लेखक द्वारा चिंता प्रकट करने की भाषा है, आक्षेप की नहीं।

तीर्थंकर दिव्यध्वनि की भाषा के सम्बन्ध में हमने इस लेख के प्रारम्भ में स्पष्टीकरण दे दिया है कि दिव्यध्वनि सर्वभाषात्मक है। अर्द्धमागधी नामकरण भी मगध देव के कारण है और भगवान महावीर के कारण मगध देश का भी सम्बन्ध होकर उसके साथ अन्य भाषाओं का मिश्रण है।

सर्वार्धमागधी सर्वभाषासु परिणामिनीम्।
सर्वेषां सर्वतो वाचं सार्वज्ञीं प्रणिदध्महे॥ [6]

अर्द्धमागधी सर्व भाषाओं के रूप में सबकी भाषा थी जो सर्वज्ञ के उपदेश की भाषा थी। जिनसेन आचार्य ने भी इसे सर्वभाषात्मक कहा है।

अर्द्धमागधी अठारह देशी भाषा रूप थी, केवल महावीर तीर्थंकर की नहीं, सभी तीर्थंकरों की वाणी थी -

दश अष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा सात शतक सुचेत।
सो स्यादवादमय सप्त भंग, गणधर गूँथे बारह सु अंग॥ [7]

इस प्रकार भगवान महावीर के उपदेश को लेकर जो अर्द्धमागधी से विद्वान लेखक ने दिगम्बरों के लिये अनर्थकारी प्रभाव बताया है, यह सिद्ध नहीं होता। धवला[8] में लिखा है कि केवली के वचन इसी भाषा रूप ही है, ऐसा निर्देश नहीं किया जा सकता। क्रम विशिष्ट वर्णात्मक अनेक पंक्तियों के समुच्चय रूप और सर्वश्रोताओं में प्रवृत होने वाली ऐसी केवली की ध्वनि सम्पूर्ण भाषारूप होती है, ऐसा मान लेने में कोई विरोध नहीं आता है। डॉ. हीरालालजी ने महावीर स्वामी के पूर्व का इतिहास बताते हुए लिखा है[9] कि द्रव्यश्रुत अर्थात् शब्दात्मक की दृष्टि से महावीर से पूर्व कालीन कोई जैन साहित्य उपलब्ध नहीं है किन्तु भावश्रुत की अपेक्षा जैन श्रुतांगों के भीतर कुछ ऐसी रचनाएँ मानी गई हैं जो महावीर से पूर्व श्रमण परम्परा में प्रचलित थी, इसलिये उन्हें 'पूर्व' कहा गया है किन्तु ये पूर्व साहित्य सुरक्षित नहीं रह सका।

दिगम्बर परम्परा के अनुसार ग्यारह अंग का ज्ञान नष्ट हो गया। पूर्व में बहुत कम अवशिष्ट रहा जो आचार्य धरसेन और आचार्य गुणधर द्वारा प्रचार - प्रसार में आया।

वह भी विक्रम की प्रथम शताब्दी के कुछ समय पूर्व से।

वीर निर्वाण के पश्चात् दशम शती में श्वेताम्बरों ने जो पाटलीपुत्र, माथुरी और वलभी वाचनाओं द्वारा उस समय की अपनी भाषा में अंगों का संकलन किया उनकी भाषा को अर्द्धमागधी नाम दिया गया और षट्खंडागम, कसायपाहुड़ से प्रारम्भ कर 'समयसार', 'धवला' आदि की जो दिगम्बर आचार्यों द्वारा रचना हुई, उनकी भाषा को शौरसेनी नाम दिया गया।

आचार्य पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि[10] में लिखा है कि आरातीय-आचार्यों ने काल दोष से संक्षिप्त आयु, मति और बलशाली शिष्यों के अनुग्रहार्थ दशवैकालिक आदि ग्रन्थों की रचना की। ये अर्थ की दृष्टि से सूत्र ही हैं। यहाँ शब्द रचना को छोड़कर अर्थ की दृष्टि बताई गई है। ग्रंथ रचना का नियम यह है कि लेखक जब जिस देश में रहता है वहाँ की प्रचलित भाषा का वह उपयोग करता है उसके उच्चारण भी उसी प्रकार के होते हैं। श्वेताम्बर अंगग्रन्थों के सम्बन्ध में डॉ. हीरालालजी ने उक्त अपने ग्रंथ में लिखा है[11] कि श्वेताम्बर आगम ग्रंथों में प्राक्तन अर्द्धमागधी का स्वरूप नहीं मिलता। भाषा शास्त्रियों के मतानुसार वर्णों के विपरिवर्तन की प्रक्रिया, भाषा सरलीकरण, युगानुसार प्रवृत्तियों के प्रभाव से तथा कालानुसार मौखिक परम्परा के कारण भिन्नता आती रहती है। इस भिन्नता से भाषा की भिन्नता होने पर उस भाषा के ग्रंथों की शब्द भिन्नता का अनुमान किया जा सकता है। इसी कारण प्राकृत के भी मागधी, अर्द्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्रीय, पैशाची आदि भेद हो गये और पीछे प्राकृत व्युपत्ति में आचार्य हेमचन्द्र के मतानुसार जिसकी प्रकृति संस्कृत से है उससे आगत प्राकृत है। यहाँ आचार्य का अभिप्राय यह है कि इसके व्याकरण हेतु संस्कृत रूपों को आदर्श मानकर प्राकृत शब्दों का अनुशासन किया गया है। संस्कृत की अनुकूलता हेतु प्रकृति को लेकर प्राकृत के आदेशों की सिद्धि की गई है।

Comparative Grammer (कम्परेटिव ग्रामर), भूमिका में हार्नले ने लिखा है[12] कि अर्द्धमागधी का रूप गठन मागधी और शौरसेनी से हुआ है। प्राकृत भाषा के दो वर्ग हैं, एक वर्ग शौरसेनी बोली है और दूसरे में मागधी प्राकृत बोली है, इनके मध्य में एक रेखा उत्तर में खिंचने पर खालसी से वैराट, इलाहाबाद और दक्षिण में रामगढ़ से जोगढ़ तक है। इस प्रकार शनैः शनैः ही दोनों प्राकृतें मागधी और शौरसेनी मिलकर तीसरी अर्द्धमागधी बन गई। यही बात ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक Seven Grammers of the Dilectors (सेवन ग्रामर्स ऑफ दी डाइलेक्टर्स) में लिखी है। प्राचीन भारत में शौरसेनी और मागधी दो ही भाषा थी। वर्तमान में श्वेताम्बर आगम साहित्य में जो ग्रंथ अर्द्धमागधी में उपलब्ध हैं, वह अर्द्धमागधी तीर्थंकर महावीर की दिव्यध्वनि की भाषा नहीं है। **इसका रूप तो चौथी पांचवीं शताब्दी में गठित हुआ है।** दिव्यध्वनि का भाषात्मक रूप आर्य-अनार्य आदि वर्ग की विभिन्न भाषाओं द्वारा ग्रथित होता है। आचार्यों ने अठारह लघुभाषाओं का मिश्रण इसमें माना है। भाषा का यह रूप सभी स्तर के प्राणियों को बोध्य है [13]।

उक्त प्रमाणों से लेखक महोदय को अपनी चिन्ता दूर कर लेनी चाहिये। नाम की समानता से वर्तमान अर्द्धमागधी तीर्थंकरों के उपदेश की भाषा नहीं हो सकती।

प्रबुद्ध पाठक जानते ही हैं कि **परम पूज्य आचार्य विद्यानन्दजी मुनि महाराज** के शुभाशीर्वाद से शौरसेनी प्राकृत की प्राचीनता, प्राकृत में उसकी प्रमुखता, व्याकरण की रचना, दिल्ली विश्वविद्यालय में उसकी पाठ्य पुस्तकों में स्वीकृति और स्वतंत्र रूप से वहाँ कार्य

प्रारम्भ, यह सब दिगम्बर जैनाचार्यों की रचनाओं के महत्व को प्रतिपादित करता है। नौ वर्ष से प्राकृत भवन शोध संस्थान, दिल्ली से **'प्राकृत विद्या'** [14] शोध पत्रिका भी प्रकाशित हो रही है।

विशेष यह है कि मागधी अपभ्रंश आदि प्राकृत भाषाओं की प्रकृति शौरसेनी ही है। यह सब आचार्य हेमचन्द्र कृत प्राकृत व्याकरण से ज्ञात होता है। भरत नाट्य शास्त्र [15] में शौरसेनी को सभी उत्तम पुरुषों के द्वारा काव्य आदि साहित्यिक रचना में प्रयोग किया जाना चाहिये, यह प्रेरणा दी गई है।

सन्दर्भ :

1. दर्शन प्राभृत, आचार्य कुन्दकुन्द, माणिकचन्द दि. जैन ग्रंथमाला, प्रथमावृत्ति, हीराबाग, मुम्बई, *गाथा* - 35, पृ. 28,
2. सरस्वती पूजा, पूजनपाठ प्रदीप, सब्जीमंडी जैन मन्दिर, दिल्ली, पृ. 406
3. आदिपुराण, आचार्य जिनसेन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 23 / 70
4. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, प्रथम भाग, द्वितीय संस्करण, आ. शांतिसागर क्षाणी ग्रंथमाला, बुढ़ाना (मुज्जफरनगर), उ.प्र., पृ. 238, 1992,
5. अर्हत् वचन, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर, **10** (3), जुलाई 98
6. काव्यानुशासन, वाग्भट, 1915, निर्णयसागर यंत्रालय, 23 कोलमट लेन, मुम्बई, द्वितीयवृत्ति, पृ. 2
7. पूजनपाठ प्रदीप, पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर, सब्जीमंडी, दिल्ली - 7, 11वाँ संस्करण (देव शास्त्र गुरु पूजन), पृ. 51
8. धवला, षटखखंडागम सहित, पुस्तक - 1, जैन साहित्योद्धारक फंड कार्यालय, अमरावती, 1939, पृ. 284
9. भारतीय संस्कृति को जैनधर्म का अवदान, डॉ. हीरालाल जैन, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ. 51
10. सर्वार्थ सिद्धि, आचार्य पूज्यपाद, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, सूत्र 20, पृ. 55
11. देखें, सन्दर्भ 9, पृ. 71
12. Harnale, Comparative Grammer, Introduction, p. 17, (संदर्भ - 4, पृ. 239)
13. देखें, संदर्भ 4, पृ. 240
14. प्राकृत विद्या, कुन्दकुन्द भारती - दिल्ली की शोध त्रैमासिकी, सम्पादक - डॉ. सुदीप जैन, 10 - बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, महरौली रोड़, दिल्ली - 110 067
15. भरत नाट्य शास्त्र, 17 / 34, पृ. 273, द्वारा प्राकृत विद्या 1998

प्राप्त 8.10.98

Vol. - 11, No. - 1, January 99, 49 - 54

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapītha, Indore

CULTURAL IDENTITY OF THE JAINA INFLUENCE ON THE TRIBAL RITUALS OF KORĀPUTA

■ A. P. Jain *

Introduction

The concept of culture has been defined and employed in different ways and there is a general acceptance that culture is a system of learned behaviour acquired by a person as a member of society. Culture is shared when a group of people accept it and organize their lives according to it. Cultural systems usually pass from generation to generation through a process of learning. Thus cultures vary from group to group and make members of the same group similar to each other & members of different groups different. As Benderly (1977) rightly pointed out that 'every person spends a substantial portion of his life, learning a share of his culture.

Cultural identity refers to the identification of a person or a group of people with a specific social or cultural tradition. The sense of the self-conception, learned in common, by a group of people is called 'cultural identity'. The process of cultural identification varies when a group of people adopt themselves to their new natural and social environment. Forde (1934 : 463) adds that 'culture intervenes as a middle term between the physical environment and human activity'.

Korāputa forms the southern part of Orissa. The southern boundary of this area is demarcated by river Pātal, known down stream as Macakundā and later as Silirū. The western boundary with Madhya Pradesh is roughly demarcated by river Jannārā for some time and by river Kolāba which takes the name Sāvari during its southward course. River Kolāba is the main river of Korāpūta. Alongwith the river basin, at different places, habitations and kingdoms have been established. These areas have been inhabitated by different tribes viz - Khonda, Gadvā, Parājā, Bondā, Didāyī, Bhūmiyā, Amanatyā, Gaunda and Koyā.

The Godvās and the Parājās seem to have migrated to these areas in the beginning of the second century A.D. An image of Jaina Yakshinī of the Kusāna period found at Anandapur in Keonjhar District of Orissa depicts

* N - 14, Chetakpuri, Gwalior - 474009 (M.P.)

a woman with the hairdo, neck ornaments and ear ornaments as being used today by the Bondā or Gadavā women. This would indicate the littoral tribal habitation from which the model was selected by sculptor.

The tribals of Orissa can be divided into two groups - the proto-Australoid and the Proto Dravidian. Most of the tribes living in Korāpūta area are Proto-Dravidian.Totemism is prevalent among the tribals. In Proto-Dravidian worship, father and mother goddess play important roles. The names vary from tribe to tribe. Sometimes these gods are called Dhavnipenu,Jhānkara Devtā, Dhartīmātā, Bārā Deo, Badliyāpen Dānger Devī etc.

The tribal pantheon mostly consists of the supreme sun god, mother earth, presiding deities, nature spirits, ancestral spirits and the village tutelary.

Each tribe living in Korāpūta has its own peculiar religious customs, dress, social organisation and language, either inherited or acquired through cultural cross-currents.

Inspites of these cultural cross-currents, the *predominant* tribes never believe in 'heaven' and'hell' reward of punishment during the life-time for moral or immoral acts. They believe in re-incarnation and transmigration of soul which is very naive in character.

In this background, the Korāpūta tribal religion consists of life crises rites, cyclic group rites, ancestral and totemic rites and occult practices.

The whole of Korāpūta and part of Kālāhandi was formerly known as Mahākantara and was subjugated by the Gupta Kings. Later, the *Matsyas* ruled over a portion of the area followed by the *Shilas*. Shilas were part of the Eastern Ganges and they ruled over this area for about 4 to 5 hundred years. The Shilas were Saivites. The Shila Kingdom with its capital at Nandapur was conquered by the Chindaka Nāgas of Cakrakūta some time in the 12th Century A.D.. Cakrakūta is the modern Bastar whose capital was at Barsur and later shifted to Bastar. The Chindaka Nāgas were of Nāga origin and of unknown identity. In order to strengthen their eastward expansion, the Chindaka Nāgas negotiated a matrimonial alliance with the Kākatiyas of Warangal. The Kākatiyas were Sūdras and patronized Jainism. With this alliance, Jainism came to Bastar. Bastar is mostly inhabited by the *Mārias, Murias, Abujhamārias, Gonds* and *Koyās*.

With expansion of the Chindaka Nāga Kingdom towards the east, the influence of Jainism came to Korāpūta area. Jaina idols were enshrined at Deorli which is on the bank of river Jannārā, at Jamundā on the bank of a tributary of river kolava and Jaypur on the bank of river Kolava, Māli Mountains are in the middle of Korāpūta District. One river named Molan starts from the western side of Māli mountains and meets Indrāvatī river after a forty

kilometre downward course. At different places of the river bank and at the confluence with Indrāvatī, a large number of Jaina temples were built.

Jainism is an atheistic religion. It is devoid of rituals and gives prime place to non-violence. It must have become very difficult for the Chindak Nāga Kings to establish Jaina shrines and persuade the tribals to take to the path of non-violence and non-ritualism. They seem to have decided to select the places where tribal worship was being performed either for the manuli (the indistinct wooden God) Bhīma, the Gangāma or the ancestral deity (Gotāra). The tribals mostly propitiated their wood gods, stick gods, stone gods or tree gods by different types of sacrifices. With a view to attract the tribals to Jaina worship, the kings, traders and generals constructed temples at the places of worship of tribal deities.

An interesting Bhīma worship (wooden god), prevalent even today, indicates the path taken by the torch-bearers of the Gondas for coming from Bastar to Kotpada (15 km. inside Orissa border from M.P.),who took about seven days and then lighted a fire for the festival. Along this route, many Jaina temples were constructed.

Even today, broken Jaina temples exist at the places of Gotara (ancestor worship), at places of Meria (Human sacrifice) and tribal Landi. Landi is a type of dance mostly popular among the Pāraja and Gadbas at Korāpūta, being held a place of buffalo sacrifice.

A synthesis was brought about between the somewhat obsolete and brutal ways of sacrifice and the Jaina way of belief. By the time Jaina religion came to Korāpūta, Jaina Tantricism had quite a sway. Pārasvanātha, the twentythird Tīrthankara, was designated as Bhairava and Padmāvatī, the attendant Śāsana Devī of Pārasvanātha, as Bhairavī. In some Jaina Tantrika treatises Ambikā, the attendent Śāsana Devī of Neminātha, the twenty second Tīrthankara, is also termed as Bhairavi. Ambikā is the prototype of the Buddhist Heruka. She is supposed to protect young childern. She is of yellow colour and holds a fruit or flower in one hand, one child on the waist and another child standing below. Devī Ambikā suited the psyche of the tribals most. The serpent hood of Pārasvanātha also atracted the imagination of the tribals.

The Jaina Pārasvanātha Tīrthankara and Ambikā were inducted into the life-crises rites and cyclic group rites of the tribals. However, ancestral and totemic rites were left untouched by Jaina religious influence. A large number of Ambikā idols sprang up in Korāpūta area. The most beautiful Tribhanga Ambikā is available at Deorli. The second most beautiful and quite important Ambikā is at Kecla on the bank of Kolāva. The third one is at Ampabali, on the border of Orissa and Andhra Pradesh. Other Ambikās are scattered in different places. Most of the Ambikās are propitiated by sacrifices. White

pigeon, doves, swan or duck and hen are sacrificed for Ambikā.

At Digapur, which is twenty kilometers down stream of river Kolāva from Jaypur, a three-tier idol depicts Neminātha Ambikā and Banjaruni. In the middle is Ambikā, down below is Banjāruni riding on a lion, with a bough in hand. Banjāruni is the forest goddess of the tribals. On the top is Neminātha. Duck, Sheep & hens are offered to the Banjāruni every Tuesday and Friday by either a Parājā or a Bhumiyana. However, it is very interesting to find that Ambikā is a vegeterian goddess, where as Banjaruni is a non-vegetarian goddess. Sacrificial blood kept in a leaf-mug is offered by priest to Banjaruni and not to Ambikā. Mug containing blood is not poured on the idol. This is a typical cultural cross current of tribal worship and Jaina belief.

Infant mortallity is a base of the tribal society. The tribals attach much importance of the birth of a baby and elaborate rituals, including the incantations of a witch doctor (Gunia) undertaken. At Kecla, the tribals bring the new born to the Ambikā idol for warding off the influence of evil spirits. As a part of Jaina ritual and tribal rites a Gurumāyi (Priestess) performs the rites and black goat is sacrificed. Influence of Jainism had brought the Gurumāyi ritual to the tribals. She also propitiates Ambikā or any spirit at the time of sickness of a child.

In life crisis rites, the Korāpūta tribal goes to the Jaina idols at the time of birth and sickness and not at the time of marriage or death.

In cyclic group rites, the most important are the Balijatra (Fertility rites), the Pusa Parva, Māgha Parva or Mandei and the Caita Parva. Food gathering and shifting cultivation being most important aspects of the routine life of the tribals, they undertake elaborate rituals. In fertility rites, be that sowing of the seed or clearing a dense forest for shifting cultivation, the tribal goddess is *invoked by sacrifices. At the same time, the Jaina Mahāpuruṣa is invoked,* be that Ṛṣabhanātha, Pārśvanātha or Mahāvīra, Ambikā or Cakresvarī, Mahāpuru or Mahāpuruṣa is an influence of Jaina beliefs on the tribals.

In five places of Korāpūta, such rituals are held followed by Landi or Dhemsa (Dance forms).

The most important place where such a festival is held is at Kumar Ganjana, about 40 kms. north of Korāpūta. The place is called Devatā Hanjar (Abode of Gods). The place is by the side of a tributary of Kolāva. In a single block of stone, three figures of Mahāvīra, Pārśvanātha and Ambikā have been sculpted. In the middle stands Ambikā, and on both sides are Mahāvīra & Pārśvanātha in Padmāsana. At the time of Badabheta (Mass hunting) of Caitra, the Gadaba priest paints the figures in blue stripes. He draws an intricate diagram in front of the idols and invokes their help in getting identity

of wild animals. These three figures and the yantra drawn in front of them are reminiscent of the Jagannātha Trinity and the painting of those idols.

The second place where the fertility rites are held in an elaborate manner is at the confluence of river Indrāvatī & Moran.

At this place there is a beautiful image of Jaina Śāsana Devī. She is Cakresvarī of the first Tīrthankara, Ṛṣabhanātha. The sculpture depicts a two handed goddess with a nubile body. She is locally known as Dhangdi Devī (young lady). The ornaments on the figure clearly indicate the influence of Pārāja tribal women. A Pārāja is the priest. He sacrifices pigs for the indistinct shapeless wooden deity called Mauli (earth goddess) across the fence. For the Dhangdi Devī, he sacrifices only hens and ducks, and pigs are taboo. After an elaborate ritual, the seeds are taken from the deity by young Pārāja women for sowing in the fields.

The third place where the cyclic rites are held is at Dundhari on the Mali mountains. No Pārāja, Gadāva or a Khond would eat Kandula (Redgram) without first offering the same to the Kaṇḍulabhāji Devī sitting atop a hillock. After offering Kandula the tribals come down to the bank of river Kerandi (tributary of Kolab) and pray to Śiva. Śiva is none other than Mahāvīra Tīrthankara in Vyākhyāna Mudrā (Rare Mudrā for a Jaina idol). Dharanendra, Padmāvatī idols also are worshipped alongwith Śiva. Across the rivulet, the Pārājas & Gadbas perform the buffalo sacrifice and embed pieces of flesh in the field for good crop.

The fourth place of fertility rites in Kechla. Here the Paraja Jaani invokes Jogi Mashapru (risvanath) in the following manner:

Tash kāle tash hābu
bet kāle bet hābu
salre gā hābu
katare pā hābu

(Give me best crop after cultivation, best wild animals during hunting, good cows in the cowshed and healthy baby in the house).

After incantation he draws a yantra of rectangles & circles. Invacations are followed by sacrifice and feast.

The fifth place of these rites is Chatuaon the bank of river Pātal (Machkunda). At this place both Ṛṣabhanātha and Dharanedra Padmāvatī are propitiated during the Badabhet. Yantra is drawn with Ragi powder. The yantra is a rectangle with semi-circles all around. Buffalo sacrifice is made in the name of Bhairava. Here Bhairava is Dharanendra, the Śāsana Devatā of Pārasvanātha.

Mandei is another food gathering rite of the trilbals. It is mostly held in the month of *Māgh*. During this period the *Lāthi*, representing the tribal

deity, is taken from place to place. Alongwith the *Lāthi,* tribal women carry flower from one Jaina idol to the other. By this way a cementing bond has been forged among the Jaina idols and tribal places of worship.

With the decline of the Chindaka Nāgas, the Gajapati king controlled Korāpūta in the 15th centruy A.D. Militia men of the Gajapatis called Khandayats had settled in the area. Some of them took over the priestly functions from the Jaanis of the tribals. Jaanis is a derivative of the Jaina. Ranas (warriors), Paikas (warrior), Kumbhar (Potter), Mālī (Gardner) became priest of some of the Jaina idols. Inspite of this, the tribal has been coming to those idols for the propitiation. Although Jaina influence is quite predominant is case of Pārāja, Gadha, Khond, and Amanatyas, it is minimal in case of Bhūmiyas and Gonds. It has no influence on the Bondas and Didayis, though they live on the Siliru basin.

After the decline of the Chindaka Nāgas, a branch of the ruling family settled at Sarhati a top the Kutnimāla mountains, overlooking the old fort of Nandapur. This group is called Benaagparājā. Till date the headman of this group presides over the fertility rite of 130 villages in and around Nandapur. The Headman also receives a portion of the first fruit or crop. **By tradition, the headman is a vegetarian.**

However, the tribals have not included the Jaina Tīrthankars and Śāsana Devīs in their Pantheon. They look upon the idols with awe and suspicion. It can be summed up by a Gadba incantation to the Trinity of Deta Hasnjar -

Aume - dāra bidikā na kāru
kālā katha sedha deme.
goda ke kāntha raken
mund ke lāthā raken
(OM. do not scare me.
Ensure that your promises are fulfilled
let there be no prick on my feet.
let no one accuse me of any misdeed.)

Received - 14.11.96

बधाई !

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की पंजाब प्रान्तीय इकाई के अल्पसंख्यक प्रकोष्ठ के उपाध्यक्ष पद पर श्री पुरुषोत्तमजी जैन, मंडी गोविन्दगढ़ को मनोनीत किया गया है। श्री जैन युवा सामाजिक कार्यकर्ता हैं, जिन्होंने पंजाबी भाषा में जैनधर्म विषयक पुस्तकों का लेखन / सम्पादन / प्रकाशन किया है।

मनोनयन हेतु बधाई।

वर्ष - 11, अंक - 1, जनवरी 99, 55 - 60

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

उपाध्याय मुनि श्री ज्ञानसागरजी से साक्षात्कार

तिजारा - 8.12.98

■ अनुपम जैन *

डॉ. अनुपम जैन - नमोस्तु महाराज जी। नवम्बर 1995 में पत्रकार सम्मेलन में आपने हम सब पत्रकारों को सराकोत्थान के कार्य में अपने कर्तव्य को निभाने की प्रेरणा दी थी। तभी से मन में विचार चल रहा था। पुण्योदय से आज पुन: भगवान चन्द्रप्रभु के इस अतिशय क्षेत्र पर आपके दर्शन का सुयोग बना है। **ब्र. भाई अतुलजी** (पास में बैठे) के सतत सम्पर्क एवं प्रेरणा की भी इसमें महती भूमिका है। यदि आप अनुमति दें तो मैं कुछ जिज्ञासायें आपके सम्मुख प्रस्तुत करूँ।

उपाध्याय मुनि श्री ज्ञानसागरजी - अवश्य। हमें खुशी होगी।

अनुपम - आज सम्पूर्ण देश में आपने सराकोत्थान का एक आन्दोलन चला रखा है। साधना से बचे समय को शायद आप इसी चिन्तन में लगाते हैं। कृपया बतायें कि आपको इसकी प्रेरणा कब एवं कहाँ मिली?

मुनिश्री - वर्ष 1991 में हम लोग शिखरजी में थे, उन्हीं दिनों वहाँ आये कुछ भक्तों एवं विद्वानों ने यह प्रसंग उठाया कि इस क्षेत्र में सराक बन्धु रहते हैं। **पंडित बाबूलालजी जमादार** ने उनके उत्थान हेतु काफी काम किया है। बस हमारे मन में अपने इन बन्धुओं के उत्थान हेतु कुछ करने की रूचि जगी और ....।

अनुपम - *तो क्या उस क्षेत्र में आपने अपने मन से ही विहार किया? अथवा आपके* गुरु की भी इस आदिवासी, अपरिचित, दिगम्बर मुनि की चर्या से अनभिज्ञ क्षेत्र में विहार की अनुमति थी।

सराक क्षेत्र में उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी अपने गुरु आचार्य श्री सुमतिसागरजी महाराज के साथ

मुनिश्री - अनुमति थी। मेरे गुरु **आचार्य श्री सुमतिसागरजी महाराज** की अनुमति मैंने ली थी एवं मेरे अनुरोध पर उन्होंने स्वयं सराक क्षेत्र में जाकर अपने साधर्मी बन्धुओं के कष्टों, उनकी भक्ति एवं धर्म की दृढ़ता को देखा। स्थान की आवश्यकता को देखकर उन्होंने न केवल अनुमति दी, अपितु आशीर्वाद सहित प्रेरणा भी दी।

अनुपम - आप जमादारजी के बारे में कुछ कह रहे थे।

मुनिश्री - प्रारम्भ में **बैजनाथजी सरावगी, ब्र. शीतलप्रसादजी, श्री गणेशप्रसादजी वर्णी** आदि ने बहुत काम किया। उनके प्रयास से कुछ ग्रामों में भगवान पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ भी स्थापित की गईं। रांची के पास अगासिया एक गांव है वहाँ काम शुरु हुआ। रांची के पास के एक ग्राम (शायद रोहिड़ी बाजार) में एक सप्तम प्रतिमा धारी ब्रह्मचारी थे। उन्होंने बहुत काम किया। उनके कुछ

* सम्पादक - अर्हत् वचन, डी - 14, सुदामानगर, इन्दौर - 452 009

पत्र, रसीदें जो 1925 से 1940 के दरम्यान की हैं, सुरक्षित भी हैं। उसके बाद काम ठंडा पड़ गया। फिर 1960 - 65 के आस - पास **पं. बाबूलालजी जमादार** एवं **साहू शान्तिप्रसादजी** के प्रयासों से काम ने एक बार फिर जोर पकड़ा। **रायबहादुर हरखचन्द पांड्या** उनके साथ रहे।

अनुपम - तब तो काफी काम हुआ होगा?

मुनिश्री - हाँ, हुआ था, लेकिन सराक बन्धुओं विशेषत: युवाओं से जुड़ाव न हो पाने के कारण जमादारजी के प्रयासों से जो गति आई, वह स्थायी न रह सकी, क्योंकि वह प्रयास मात्र कुछ सम्पन्न लोगों के बीच में ही रह गया।

अनुपम - मेरे मन में एक जिज्ञासा है। जब बैजनाथजी सरावगी से लेकर पं. जमादारजी तक इतने लोगों ने काम किया तो उस कालखंड में समय - समय पर बहुत सी पुस्तकें, लेख आदि भी लिखे गये होंगे। क्या उनका कोई व्यवस्थित संकलन एवं प्रकाशन हुआ है?

मुनिश्री - मैंने प्रेरणा दी थी कि जैन गजट, जैन सन्देश आदि के पुराने अंकों में जो लेख छपे हैं, उनको प्रकाशित किया जाये और मुझे खुशी है कि **'सराकोत्थान - प्रेरणा के स्वर'** पुस्तक, जो आचार्य शान्तिसागर छाणी ग्रन्थ माला के अन्तर्गत छपी है, में इनका संकलन हुआ है। आप देख सकते हैं, लेकिन वह पूरा नहीं है।

अनुपम - मैं देख रहा हूँ कि आप सराक आन्दोलन के प्रारम्भिक चरण से जुड़े जो नाम बता रहे हैं, वे सभी जैन समाज के सुधारवादी आन्दोलन के शीर्षस्थ पुरुष हैं। **ब्र. शीतलप्रसादजी, श्री गणेशप्रसादजी वर्णी, पं. बाबूलालजी जमादार, साहू शान्तिप्रसादजी** आदि सभी जैन समाज की प्रगतिशील विचारधारा के पोषक एवं सुधारवादी आन्दोलन के अग्रणी पुरुष हैं। क्या यह महज संयोग है या कोई सुविचारित नीति या कारण?

मुनिश्री - यह एक संयोग हो सकता है, किन्तु वर्तमान में तो पूरी जैन समाज जुड़ी है। आप अ. भा. दिगम्बर जैन सराक ट्रस्ट को ही देख लीजिये। (साहू अशोकजी इसके अध्यक्ष हैं) मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि ऐसे लोग जो धार्मिक क्रियाओं में कम जुड़े हैं, वे भी मानव सेवा के इस काम में पूरी तरह लग गये हैं। इसमें प्रगतिशील या आर्षपरम्परानुयायी जैसा कोई प्रश्न नहीं है।

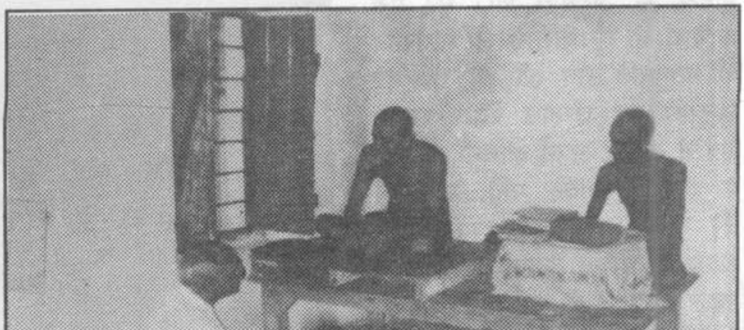

वर्षायोग में साहू अशोककुमारजी उपाध्यायश्री से विचार विमर्श करते हुए

अनुपम - और साधु संस्था का भी .... ?

मुनिश्री - हाँ, सभी साधुओं का इस कार्य में पूरा आशीर्वाद है।

अनुपम - मैं एक बार फिर पीछे जाना चाहता हूँ। आपने इस कार्य को कब एवं क्यों हाथ में लिया ?

मुनिश्री - 1991 में हम लोग शिखरजी में थे। शायद मार्च के आस - पास का समय था। **डॉ. रमेशचन्दजी बिजनौर** एवं अन्य कई विद्वानों ने वहाँ सराक बन्धुओं के बारे में बताया एवं कहा कि इस क्षेत्र में सराक बन्धु रहते हैं। उन्होंने उनके उद्धार के प्रयास करने का निवेदन किया। ज्ञात हुआ कि लगभग 30 साल पहले दिगम्बर - श्वेताम्बर ने मिलकर कोई बड़ा सराक सम्मेलन किया था, उसमें सभी सराक आये थे। 1983 में ईसरी में आचार्य श्री विद्यासागरजी के सान्निध्य में सराक सम्मेलन हुआ था। सुयोग से हजारीबाग में पंचकल्याणक होना था। बस उसमें सराक सम्मेलन रखा। इसके बाद हमने तमाम प्रतिकूलताओं, चर्या की जटिलता, साधनों के अभाव के बावजूद सराक ग्राम - तडाई में चातुर्मास (1993) का निर्णय कर लिया। जिन सराक बन्धुओं ने धर्मान्धता एवं धार्मिक विद्वेष हेतु अनेक प्रकार के अत्याचार सहे, शोषण एवं उत्पीड़न सहे, खेती - बाड़ी, फलता - फूलता व्यापार, घर - मकान, सब कुछ छोड़ा, किन्तु अपना धर्म नहीं छोड़ा। अपने धर्म एवं संस्कारों को बचाने हेतु उन्होंने जाकर जंगलों में शरण ली, नये आश्रय स्थल खोजे एवं येन - केन - प्रकारेण जीवन यापन किया। सराक क्षेत्र में बने भव्य जिनालयों के खण्डहर, प्राचीन मूर्तियाँ एवं अन्य पुरावशेष इसके प्रमाण हैं। ऐसे सराक बन्धुओं के कल्याण हेतु प्रयास करना सभी का धर्म है।

उपाध्याय मुनिश्री ज्ञानसागरजी नित्य कार्य हेतु विहार करते हुए

वर्तमान सराक गांव का एक दृष्य

अनुपम - शायद सराक बन्धुओं के भाग्योदय का समय है, तभी आपने इस विषय को इतनी प्रमुखता देकर कार्य हाथ में लिया है ?

मुनिश्री – देखिये, क्या होता है। साधू तो प्रेरणा ही दे सकते हैं, करना तो समाज को है।

अनुपम – महाराजजी विषय तो बहुत हैं, आपने जो साहित्य दिया है उसका अध्ययन भी करूँगा, किन्तु आज युवा होने के नाते मैं विशेष रूप से इस विषय पर युवाओं से आपकी अपेक्षायें जानना चाहूँगा।

मुनिश्री – समाज की शक्ति युवाओं में ही होती है। अत; वे जिस काम में जुट जायें उसमें सफलता निश्चित है। मैं कुछ सुझाव देना चाहूँगा –

क. सराकोत्थान हेतु अ. भा. दि. जैन सराक ट्रस्ट द्वारा प्रवर्तित योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु समाज में वातावरण बनायें।

ब. वे एक टीम बनाकर सराक क्षेत्र में जायें। वैसे भी युवा तीर्थ यात्रा या देशाटन हेतु जाते ही हैं। सराक क्षेत्र में जाने से उन्हें अच्छे अनुभव होंगे। रोमांचक यात्रा की अनुभूति होगी। देश की संस्कृति को नजदीक से देखने का सुखद अवसर प्राप्त होगा। इसके साथ ही जब वे अपने बन्धुओं के बीच जाकर उनकी समस्यायें सुनेंगे, तब उनके समाधान में सहयोग देने हेतु वे सहज ही प्रेरित होंगे। हर काम धन से ही नहीं होता। अपने भाइयों से चर्चा करने से सौहार्द्र एवं प्रेम बढ़ेंगे। वे लोग समाज से जुड़े यह बात बहुत जरूरी है। समाज के आम आदमी का जुड़ाव आन्दोलन की सफलता की कुंजी है।

पाकबिरा (पुरलिया) स्थित विशाल मूर्ति

अनुपम – इसके अतिरिक्त।

मुनिश्री – विभिन्न सम्मेलनों, सभाओं में सराक भाइयों की समस्याओं को प्रमुखता से उठायें, इस सबसे प्रचार तो होता ही है, आन्दोलन को गति मिलती है।

अनुपम – आपने प्रचार की बात की है तो कृपया पत्रकारों को भी कुछ सन्देश दें। (हँसी)

मुनिश्री – पत्रकार क्या नहीं कर सकते।? उनके पास तो बहुत बड़ी शक्ति है, उनकी भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। सराक क्या थे? क्या हो गये हैं? उनके लिये समाज को क्या करना चाहिये? इस बाबत पत्रकार ही तो बतायेंगे। पत्रकारों को वहाँ जाना चाहिये। सराक क्षेत्र के इतिहास, पुरातत्व का संकलन करना चाहिये। मैं एक बात बताना चाहता हूँ कि सराक जाति के पूर्वज तांबे के उत्खनन एवं शोधन की कला में माहिर थे। उनके तांबे के सिक्के चलते थे, जो वहाँ बहुलता से मिले हैं। उनके व्यापार में ये सिक्के चलते थे। इसके अलावा लोढ़ी जि. रांची एवं अन्य कई ग्रामों में जैन शिल्प की दृष्टि से बहुमूल्य मूर्तियाँ मिलती हैं। जैन इतिहास के प्राचीनतम साक्ष्य यदि कहीं मिलते हैं एवं मिलेंगे तो

वे सराक क्षेत्रों में ही मिलेंगे।

अनुपम – तो आपने अब तक 6 - 7 वर्षों में इनके सर्वेक्षण की योजना क्यों नहीं बनाई?

मुनिश्री – बनाई थी। ऋषभदेव फाउण्डेशन के **हृदयराजजी** के सहयोग से एक विस्तृत योजना बनाई थी, किन्तु दुर्भाग्यवश वह बीच में ही रह गई, व्यवस्थित पुरातात्विक सर्वेक्षण नहीं हो सका।

अनुपम – और सामाजिक सर्वेक्षण?

मुनिश्री – हाँ, वह तो हुआ है। स्व. **डॉ. कस्तूरचन्द्र कासलीवाल** एवं अन्य कई विद्वानों ने काम किया एवं प्रकाशित भी हुआ है।

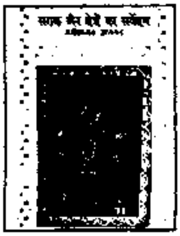

कासलीवालजी की किताब

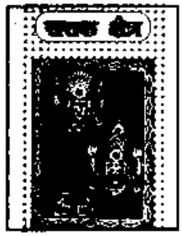

नीलमजी की किताब

अनुपम – अन्त में मैं अपनी पत्रिका हेतु आशीर्वाद चाहूंगा। आप जानते ही हैं कि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की स्थापना 1987 में की गई थी, इसकी विगत वर्षों की प्रगति आख्या आपकी सेवा में प्रस्तुत की है, जिससे इसकी बहुआयामी अकादमिक गतिविधियों की लक झलक मिलती है। ज्ञानपीठ की त्रैमासिक शोध पत्रिका **अर्हत् वचन** के 10 वर्षों में 40 अंक प्रकाशित हो चुके हैं। 11 वें वर्ष में प्रवेश के अवसर पर जनवरी-99 का अंक **'सराक एवं जैन इतिहास विशेषांक''** के रूप में प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है। कृपया आशीर्वाद प्रदान करने की कृपा करें।

मुनिश्री – अर्हत् वचन द्वारा **'सराक एवं जैन इतिहास विशेषांक'** का प्रकाशन बहुत प्रशंसनीय एवं ऐतिहासिक महत्व का कार्य होगा। आपका यह कार्य केवल जैन समाज में ही नहीं, केवल भारत में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व में पत्रिका का गौरव बढ़ाने वाला होगा। हमारे जो बन्धु न केवल वर्तमान में अपितु हजारों वर्षों से मांसाहारियों के बीच रह रहे हैं, जो अपने धर्मायतनों (साधुओं एवं गुरुओं) की संगति से वंचित होने के बावजूद अपने संस्कारों एवं संस्कृति को बचाये हुए हैं, ऐसे सराक बन्धुओं का जीवन जनसामान्य, विशेषत: युवाओं के लिये प्रेरणादायी रहेगा।

अर्हत् वचन तो बहुत अच्छा काम कर रही है। इस पत्रिका में इतिहास एवं पुरातत्व विषयक सुन्दर, शोधपूर्ण साम्रगी सदैव से प्रकाशित होती रही है और अब हमारी आपसे नई कड़ी जुड़ रही है, यह शुभ लक्षण है। सराक क्षेत्र को आप (डॉ. अनुपम जैन) से एवं आपकी पत्रिका से बहुत अपेक्षायें हैं। हमें विश्वास है कि आप इस ओर पूरा ध्यान देंगे। मेरा शुभाशीष सदैव आपके साथ है।

परम पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज

संक्षिप्त जीवन परिचय

दीक्षा पूर्व नाम	: श्री उमेशकुमार जैन
जन्म तिथि	: बैसाख शुक्ल द्वितीया, वी.नि.सं. 2014, सन् 1958 ई.
जन्म स्थान	: मुरैना (म.प्र.)
माता का नाम	: श्रीमती अशर्फीजी
पिता का नाम	: श्री शांतिलालजी जैन
भाई	: 2 - सर्वश्री राकेश जैन एवं प्रदीप जैन
बहनें	: 2 - श्रीमती मीनाजी एवं श्रीमती अनीताजी
ब्रह्मचर्य व्रत	: 1974
ब्रह्मचर्य व्रत प्रदाता	: आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज
क्षुल्लक दीक्षा	: सोनागिरजी, 5.11.1976
क्षुल्लक दीक्षोपरान्त नाम	: क्षु. श्री गुणसागरजी
क्षुल्लक दीक्षा गुरु	: आचार्य श्री सुमतिसागरजी महाराज
मुनि दीक्षा	: सोनागिरजी, महावीर जयन्ती, 31.3.1988
मुनि दीक्षोपरान्त नाम	: मुनि श्री ज्ञानसागरजी
दीक्षा गुरु	: आचार्य सुमतिसागरजी
उपाध्याय पद	: सरधना, 30.1.1989

आचार्य विद्यासागर वांङ्मय राष्ट्रीय संगोष्ठी

सीकर — 27 - 30 सितम्बर 1998

संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के सुशिष्य, प्रखर वक्ता, आगमवेत्ता **मुनि श्री सुधासागरजी महाराज** के सान्निध्य में राजस्थान के सीकर नगर में 27 - 30 सितम्बर 98 के मध्य **'आचार्य विद्यासागर वाङ्मय राष्ट्रीय संगोष्ठी'** का आयोजन किया गया। इस संगोष्ठी में शताधिक जैन - जैनेतर विद्वान सम्मिलित हुए। संगोष्ठी के संयोजक **डॉ. रमेशचन्द जैन (बिजनौर)** तथा सहसंयोजक **डॉ. कपूरचन्द जैन (खतौली)** थे। संगोष्ठी का विस्तृत प्रतिवेदन अलग से आयोजकों द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है।

सम्पर्क : **डॉ. रमेशचन्द जैन**
जैन मन्दिर के पास, **बिजनौर** (उ.प्र.)

THE JAIN SANCTUARIES OF FORTRESS OF GWALIOR

The Jain Sanctuaries of Fortress of Gwalior by Dr. T.V.G. Sastri,, Published by Kundakunda Jñānapītha, 584, M. G. Road, Indore - 452 001, Rs. 500 = 00, PP. XII + 140. Plates 24, Size A / 4

Reviewed by **Dr. Shailendra Rastogi,** *Ex - Director, Rāma Kathā Samgrahālaya, Ayodhya. Res.- Saparya, 223 / 10, Rastogi Tola, Raja Bazar, Lucknow.*

राज्य संग्रहालय - लखनऊ के पुरातत्व अनुभाग, जिसका मैं सुदीर्घकाल तक सहायक निदेशक रहा हूँ, के संग्रह में दो शिलालेख सास - बहू मन्दिर ग्वालियर के हैं।

प्रथम शिलालेख सम्वत् 1161 का है। (राज्य संग्रहालय संख्यक E / 16, 5' x 3¼" x 11½" लेख नौ पंक्तियों में है) ग्वालियर के सास - बहू मन्दिर के इस अभिलेख में कच्छप घाट के शासकों की वंशावली के साथ ही शिव मन्दिर का वर्णन है। इस शिलालेख का प्रणेता 'निर्गन्थ नाथ' यशोदेव का अभिन्न मित्र है। इस लेख को कनिंघम महोदय ने ग्वालियर के उर्वाही द्वार में पाया था। इस लेख का प्रकाशन श्री आर. एल. मित्र और प्रोफेसर हूल्स ने किया है।

दूसरा अभिलेख सम्वत् 1165 का है। (राज्य संग्रहालय संख्यक E / 17, 2' x 8½" x 1' 11" लेख नौ पंक्तियों में है) इसमें कच्छप घाट के सूर्यपाल एवं महिपाल का उल्लेख है। इसे रत्नपाल की प्रार्थना पर उत्कीर्ण करवाया गया है। इसमें जैन मन्दिर के निर्माण के विषय में ज्ञात होता है। चूंकि शिलालेख काफी समय तक खुले स्थान पर रहा अतः इसके अक्षर पर्याप्त घिस चुके हैं। ये लेख अब तक अप्रकाशित ही हैं।

इन अभिलेखों के कारण मेरे अन्तर्मन में ग्वालियर के जैन वैभव के दर्शन की अभिलाषा सुषुप्तावस्था में विद्यमान थी। अब मुझे यह लिखने में रंचमात्र भी संकोच नहीं है कि लब्ध प्रतिष्ठित पुराविद् डॉ. टी. वी. जी. शास्त्री विरचित 'दी जैन सेन्चुरिज ऑफ दी फोर्टेस ऑफ ग्वालियर' (The Jain Sanctuaries of the Fortress of Gwalior) पुस्तक से मेरे मन में ग्वालियर किले के जैन पुरा वैभव को घर बैठे देखने का चिरपोषित स्वप्न साकार हो गया है।

हूण शासक मिहिर के अभिलेख में उल्लिखित 'गोप भूधर' का क्षेत्र ही आज का ग्वालियर का भूभाग है। इसी गोपाचल की गुफाओं के छिपे हुए जैन कला रत्नों से प्रस्तुत पुस्तक चमत्कृत है। कला एवं पुरातत्व के तलस्पर्शी ज्ञाता ने मात्र इस परिसर में विकीर्ण जैन कला सम्पदा को ही नहीं निरूपित किया है, अपितु ग्वालियर की भौगोलिक स्थिति, पूर्ण ऐतिहासिक दशा, इस स्थल की प्राचीन एवं मध्यकालीन ऐतिहासिकता, तोमर शासकों की जैनों को देन, जैन गुफाओं के वर्णन के साथ इनके वर्गीकरण, गोपाचल की जैन मूर्तियों पर कला का प्रभाव यहाँ पर उत्कीर्ण शिलालेख, यहाँ की गुफाओं का वास्तुशिल्प एवं जैन प्रतिमाओं का शास्त्रीय विवेचन किया है। इनके साथ ही प्रतिमा विज्ञान एवं शिल्प शास्त्र के खास शब्दों के हिन्दी अर्थ, नक्शें एवं स्केचों के द्वारा विषय को अति सुगम बनाया गया है। प्रत्येक अध्याय के साथ संदर्भ ग्रन्थों का भी उल्लेख एवं अन्त में इन्डेक्स दिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में पाठक के समक्ष ग्वालियर किले में अवस्थित अर्हन्त प्रतिमाओं के नयनाभिराम चित्रों की मानव मंजूषा खुल जाती है। इस अनुपम रचना के लिये विद्वतरेण्य शास्त्रीजी हार्दिक बधाई के पात्र हैं। मेरे विचार से जहाँ यह ग्रन्थ कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर का बहुमूल्य प्रकाशन है। वहीं इस ग्रन्थ हेतु वित्तीय अनुदान देकर श्रीमती रमादेवी एवं बिहारीलाल दिगम्बर जैन ट्रस्ट, ब्लूफील्ड (अमेरिका) भी धन्य हो गया है।

JAINISM - A Pictorial Guide to the religion of Non-Violence

Jainism - A pictorial Guide to the Religion of Non-Violence by Kurt Titze with contributions by Klaus Bruhn, Jyoti Prasad Jain, Noel K. King, Vilas A. Sangve and others. Published by Motilal Banarsidas Pvt. Limited, Delhi, First Edition, 1998, XII + 268, Rs. 2500 = 00

The book under review is an outcome of the decision taken by author in 1968-69 after his visit to Mount Abu and Sravanbelgola to make Jainism a better known religion in the west. He feels that the pictorial supplementation to the classical Jaina Texts is essential for the better understanding. For the same he visited many remote centre, who are not usually available on any guide map. He also attended an annual conference of Kundakunda Jñānapītha, known as Jaina Vidyā Sangosthi held at Indore during 12-13 January 1992.

According to author, who is of German origin but citizen of Australia, it is a first guide to undeservedly over looked religion with open eyes and loving heart. I can say firmly that he is succesful in his aim. Content and presentation of the photographs in the book is of high standard and it should be kept in every library.

Dr. Anupam Jain

महाश्रमणी (श्री स्वर्णकान्ताजी) अभिनन्दन ग्रन्थ

महाश्रमणी (श्री स्वर्णकान्ताजी) अभिनन्दन ग्रन्थ, मुख्य सम्पादिका - साध्वी स्मृति, प्रकाशक - उपप्रवर्तिनी श्री स्वर्णकान्ता अभिनन्दन ग्रन्थ समिति, अम्बाला

एवं पच्चीसवीं महावीर निर्वाण शताब्दी समिति, पंजाब, मालेरकोटला, 1997, पृ. लगभग 650 (अनेक बहुरंगी चित्रों सहित)

जैनधर्म की स्थानकवासी परम्परा की साध्वियों ने पंजाब में व्यापक भ्रमण कर भगवान महावीर के संदेशों के प्रचार एवं पंजाब प्रान्त के जैन बन्धुओं को संस्कारित करने में महान योगदान दिया है। पंजाबी स्थानकवासी जैन परम्परा में प्रवर्तिनी श्री पार्वतीजी महाराज का अग्रगण्य स्थान है। उनकी परम्परा में दीक्षित श्री पार्श्ववतीजी महाराज से 27.10.1947 को दीक्षित उपप्रवर्तिनी श्री स्वर्णकान्ताजी महाराज के दीक्षा स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर प्रकाशित इस ग्रन्थ को अवसर की गरिमा के अनुरूप सुन्दर एवं आकर्षक रूप में प्रस्तुत करने हेतु संयोजक श्री पुरुषोत्तमजी जैन एवं मंत्री श्री रवीन्द्र जैन बधाई के पात्र हैं।

डॉ. धर्मचन्द्र जैन (कुरुक्षेत्र) जैसे अग्रगण्य विद्वानों से समन्वित सम्पादक मण्डल ने साध्वी श्री स्मृतिजी के नेतृत्व में इस ग्रन्थ के 5 खण्डों में बहुमूल्य सामग्री को संयोजित किया है। श्रद्धार्चना, व्यक्तित्व दर्शन, प्रवचन पंखुड़ियां, अध्यात्म दर्शन एवं साहित्य, इतिहास कला एवं संस्कृति शीर्षक खण्डों में अनेक मौलिक, शोधपूर्ण एवं सर्वेक्षणात्मक आलेख संकलित हैं। इनके संकलन के कारण यह ग्रन्थ प्रत्येक पुस्तकालय एवं जैन विद्या के अध्येता हेतु संग्रहणीय बन गया।

सुन्दर एवं उपयोगी प्रकाशन हेतु सम्पादक मण्डल एवं प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

चतुर्थ जैन विज्ञान विचार संगोष्ठी – 98

बीना, 2 – 4, अक्टूबर 98,

■ निहालचंद जैन *

पूज्य मुनि श्री क्षमासागरजी, ऐलक श्री प्रभावसागरजी एवं **क्षुल्लक श्री नयसागरजी** के पावन सान्निध्य में दि. जैन मंदिर, बीना (म.प्र.) के सभागार में 2 अक्टूबर से 4 अक्टूबर के मध्य चतुर्थ जैन विज्ञान विचार संगोष्ठी सम्पन्न हुई। उद्‌घाटन नई दिल्ली के श्री कमलकान्त जैसवाल, आई.ए.एस. (रेजीडेन्ट आयुक्त उ.प्र. सरकार) द्वारा दीप प्रज्जवलन से हुआ। मंगलाचरण सिद्धार्थ जैन की णमोकार मंत्र की संगीतमय प्रस्तुति से हुआ।

संगोष्ठी में देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों के जैन वैज्ञानिक एवं मनीषी उपस्थित हुए जिनका समाज के अध्यक्ष श्री अभय सिंघई एवं महामंत्री श्री विभव कोठिया ने उपहार देकर हार्दिक स्वागत किया। संगोष्ठी संयोजक प्राचार्य निहालचंद जैन ने संगोष्ठी का उद्देश्य बताते हुए इसे वैज्ञानिक दृष्टि सम्पन्न पुरोधा संत मुनि श्री क्षमासागरजी की सृजनशील चिंतन का सुफल कहा।

विद्वानों ने सात सत्रों में शोध आलेखों का वाचन प्रस्तुत किया।

2.10.98 – उद्‌घाटन प्रात:कालीन प्रथम सत्र

1. डा. नलिन के. शास्त्री, कुल सचिव, गया : **ईश्वर की अवधारणा : पाश्चात्य चिंतन**

2.10.98 – द्वितीय सत्र

1. श्री कमलकान्त जैसवाल I.A.S. : **जैन धर्म समाज में**
2. डा. आर.के. जैन, भोपाल : **आधुनिक चिकित्सा पद्धति और अहिंसा**
3. डा. अनिल जैन, अहमदाबाद : **क्लोनिंग और कर्म सिद्धान्त**

2.10.98 – तृतीय सत्र

1. डा. अशोक कुमार लाडनूं : **जैन संस्कृति और समाज**
2. डा. आर. के. जैन, विदिशा : **भूमिगत वनस्पति और विज्ञान**
3. डा. अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर : **आशीर्वाद का विज्ञान**

3.10.98 – चतुर्थ सत्र

इसका शुभारंभ सिद्धार्थ जैन के मंगलगान से हुआ। इस सत्र के प्रमुख वक्ता प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन, फिरोजाबाद ने अपनी प्रभावक शैली में श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। अंत में पूज्य मुनि श्री के प्रवचन हुए।

3.10.98 – पंचम सत्र

1. डा. अशोक जैन, ग्वालियर : **निगोदिया जीव और आधुनिक विज्ञान**
2. डा. रतनचंद जैन, भोपाल : **वैज्ञानिक जीवन पद्धति एवं अनेकान्त**
3. प्राचार्य निहालचंद जैन, बीना : **अजीव द्रव्यों की वैज्ञानिकता**
4. डा. सुरेश जैन, विदिशा : **उदुम्बर फल और विज्ञान**
5. श्री अजित जैन 'जलज', ककरवाहा : **अहिंसक आदर्श आहार – अण्डा या दूध ?**

अंत में प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन का वीतराग विज्ञान पर प्रवचन अत्यन्त सारगर्भित एवं प्रभावक रहा।

4.10.98 – सप्तम सत्र

श्री सौरभ जैन, झांसी ने मंगलगान प्रस्तुत किया। इस प्रात:कालीन सत्र के प्रमुख वक्ता प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी जैन थे। **''मन एवं मनुष्याणां बंधनं मोक्षकारणं''** पर केन्द्रित अपना प्रभावक प्रवचन किया। पूज्य मुनिश्री ने मन की पवित्रता पर राष्ट्रपति लिंकन का संस्मरण सुनाया एवं विनम्र व्यवहार करने के लिए प्रेरित किया।

4.10.98 – समापन सत्र

यह सत्र मुख्य अतिथि **'पद्मश्री' बाबूलाल पाटोदी, इन्दौर** के द्वारा दीप प्रज्वलन से प्रारंभ हुआ। विशिष्ट अतिथिगण थे - श्रीमती अनुराधा शंकरसिंह - पुलिस अधीक्षक, विदिशा, श्री सुरेश जैन, भोपाल, श्री हीरालाल झांझरी, अध्यक्ष - जैन समाज इन्दौर एवं महामंत्री श्री कैलाश वेद, श्री हृदयमोहनजी, पूर्व विधायक, विदिशा।

श्रीमती अनुराधा जी I.P.S विदिशा ने मौलिक चिंतनपूर्ण व्याख्यान देते हुए कहा कि जैन दर्शन की पाषाण में जीवन की परिकल्पना बड़ी वैज्ञानिक है क्योंकि विज्ञान में परमाणु भी गतिशील है और गति - जीवन का लक्षण है। श्री सुरेश जैन ने संगोष्ठी में लोकार्पित पुस्तक "ABC of Jainism" की समीक्षा प्रस्तुत करते हुए संगोष्ठी की उपलब्धि को विज्ञान का आध्यात्मीकरण और अध्यात्म का वैज्ञानिकीकरण कहा। इसके लेखक श्री शान्तिलाल जैन ने पुस्तक की विशेषताएँ बताई।

* संयोजक - जैन विज्ञान विचार संगोष्ठी
प्राचार्य - शा. उ. मा. विद्यालय क्रमांक 3 के सामने,
बीना (सागर) म.प्र.

अ.भा. प्राच्यविद्या सम्मेलन, बड़ौदा में

प्रोफेसर प्रेमसुमन जैन अध्यक्ष निर्वाचित

अ.भा. प्राच्यविद्या सम्मेलन का 39 वां अधिवेशन महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा (गुजरात) में 13 से 15 अक्टूबर 1998 को आयोजित हुआ। इस सम्मेलन में संस्कृत, प्राकृत, पालि, दर्शन, संस्कृति, इतिहास, ललितकला आदि के देश - विदेश से लगभग 700 मूर्धन्य विद्वान सम्मिलित हुए। प्राकृत एवं जैन धर्म खण्ड में भी 50 - 60 विद्वानों के शोध - आलेख सम्मिलित थे।

इस प्राच्यविद्या सम्मेलन में मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर के प्रोफेसर एवं डीन डॉ. प्रेम सुमन जैन को सम्मेलन के कार्यकारिणी सदस्य और प्राकृत एवं जैन धर्म खण्ड के राष्ट्रीय अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित किया गया है। इस पद को पूर्व में प्रो. ए.एन. उपाध्ये, प्रो. हीरालाल जैन, प्रो. दलसुख भाई मालवणिया, प्रो. राजाराम जैन जैसे मनीषियों ने सुशोभित किया था। लगभग 20 वर्षों के अन्तराल के बाद पुन: किसी जैन मनीषी का इस पद पर निर्वाचन हुआ है। समाज इससे गौरवान्वित हुई है। अगला अधिवेशन मद्रास में होगा। प्रो. प्रेमसुमन जैन को इस ऐतिहासिक उपलब्धि के लिए कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की हार्दिक बधाई।

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव : शिक्षा एवं दर्शन

राष्ट्रीय संगोष्ठी, कुरुक्षेत्र - जनवरी 16 - 17, 1999

□ अनुपम जैन *

परम पूज्य **उपाध्याय मुनि श्री गुप्तिसागरजी** के सान्निध्य एवं **पूज्य गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी** की प्रेरणा से संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र द्वारा भगवान ऋषभदेव के निर्वाण दिवस के उपलक्ष्य में 16 - 17 जनवरी 1999 के मध्य द्विदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। उद्घाटन एवं समापन सत्रों के अतिरिक्त 3 तकनीकी सत्रों में कुल 23 शोधपत्र प्रस्तुत किये गये। मूर्धन्य जैन विद्वान **प्रो. धर्मचन्द्र जैन** के कुशल संयोजन एवं **डॉ. श्रीकृष्ण शर्मा** के सुन्दर समन्वय से संगोष्ठी अत्यन्त सफल रही। विश्वविद्यालय के कुलपति **प्रो. मुनिलालजी रंगा** की संकल्पशक्ति, नेतृत्व क्षमता एवं गहन रूचि की समागत विद्वानों ने भूरि - भूरि प्रशंसा की।

<u>उद्घाटन सत्र - 16.1.99, प्रातः 10.30 से 2.30 तक, श्रीमद्भगवद्गीता सदन, कुरुक्षेत्र</u>

अध्यक्षता : **प्रो. मुनिलाल रंगा**, कुलपति - कुरुक्षेत्र वि.वि., कुरुक्षेत्र
मुख्य अतिथि : **प्रो. वाचस्पति उपाध्याय**, कुलपति - लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली
मुख्य वक्ता : **प्रो. आर.आर. नांदगांवकर**, पूर्व कुलपति,
निदेशक - गणिनी ज्ञानमती शोधपीठ, हस्तिनापुर (मेरठ)
विशिष्ट अतिथि : **प्रो. एस. पी. सिंह**, कुलपति - वीर कुंवरसिंह वि.वि., आरा
डॉ. नेमीचन्द जैन, संपादक - तीर्थंकर, इन्दौर
श्री राजीव जैन, चंडीगढ़
संचालन : **डॉ. श्रीकृष्ण शर्मा**, कुरुक्षेत्र
मंगलाचरण : **ब्र. सुमन शास्त्री**, संघस्थ - उपाध्याय मुनि श्री गुप्तिसागरजी

इस सत्र में कुरुक्षेत्र के बुद्धिजीवियों के अतिरिक्त अम्बाला, सोनीपत, चण्डीगढ़ आदि स्थानों के 1000 से अधिक जैन धर्मावलम्बी वि.वि. के प्रतिष्ठित सभागार श्रीमद्भगवद्गीता सदन में उपस्थित थे। पूज्य उपाध्याय श्री ने वि.वि. के संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान में जैन अध्ययन की स्थापना में आर्थिक सहयोग प्रदान करने हेतु एक ट्रस्ट के गठन की घोषणा की। इस ट्रस्ट में 10,00,000=00 रु. के अंशदान की तत्काल घोषणा की गई तथा **डॉ. नीलम जैन, सहारनपुर** को ट्रस्ट एवं वि.वि. के मध्य समन्वय हेतु संयोजिका मनोनीत किया गया। स्वागत डॉ. धर्मचन्द्र जैन एवं धन्यवाद ज्ञापन डॉ. इन्दु शर्मा द्वारा किया गया।

<u>प्रथम सत्र - 16.1.99, अपरान्ह 3.30 से 5.15 तक, सीनेट हॉल, कुरुक्षेत्र</u>

अध्यक्षता : **प्रो. प्रेमसुमन जैन**, संकायाध्यक्ष - मानविकी संकाय, मोहनलाल सुखाड़िया वि.वि., उदयपुर
संचालन : डॉ. **रणवीरसिंह**, कुरुक्षेत्र वि.वि., कुरुक्षेत्र
वक्ता :
1. डॉ. **अनुपम जैन**, इन्दौर : **'जैनधर्म के विषय में कतिपय भ्रांतियाँ एवं वास्तविकताएँ'**
2. डॉ. **रमेश पाण्डेय**, दिल्ली : भगवान **ऋषभदेव की वर्ण व्यवस्था का आधार - कर्म**
3. डॉ. **नेमीचन्द जैन**, इन्दौर : **'भगवान ऋषभदेव और पर्यावरणिक नैतिकता'**
4. डॉ. **प्रेमसुमन जैन**, उदयपुर : आत्मधर्म प्रणेता भगवान ऋषभदेव

<u>द्वितीय सत्र - 17.1.99, प्रातः 9.30 से 11.00 तक, सीनेट हॉल, कुरुक्षेत्र</u>

अध्यक्षता : **प्रो. राजकुमार नांदगांवकर**, निदेशक -गणिनी ज्ञानमती शोधपीठ , हस्तिनापुर
संचालन : **डॉ. श्रीकृष्ण शर्मा**, कुरुक्षेत्र वि.वि., कुरुक्षेत्र

वक्ता : 1. **डॉ. सत्यदेव कौशिक,** अलीगढ़ : **आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव और उनकी प्राचीनता**
2. **डॉ. अरुणा शर्मा,** कुरुक्षेत्र : **'ऋषभदेव तथा तत्प्रतिपादित समाज व्यवस्था'**
3. **डॉ. नीलम जैन,** सहारनपुर : **'ऋषभदेव और नारी शिक्षा'**
4. **प्रो. एस. पी. शुक्ल,** कुरुक्षेत्र : **'तीर्थंकर ऋषभदेव के प्राचीन शिल्पांकन'**
5. **डॉ. राजेश्वर मिश्र,** कुरुक्षेत्र : **'वैदिक साहित्य और ऋषभदेव'**
6. **श्री राजेश पुरोहित,** कुरुक्षेत्र : **'Kalinga, An Ancient Seat of Jainism'**
7. **प्रो. आर. आर. नांदगांवकर,** नागपुर : **'जैनाचार एवं पर्यावरण शुद्धि'**

तृतीय सत्र – 17.1.99, प्रात: 11.30 से 1.30 तक, सीनेट हॉल, कुरुक्षेत्र

अध्यक्षता : **डॉ. नेमीचन्द जैन,** सम्पादक - तीर्थंकर, इन्दौर
संचालन : **डॉ. रणवीरसिंह,** कुरुक्षेत्र
वक्ता : 1. **प्रो. परमानन्द गुप्त,** कुरुक्षेत्र : **'षट्कर्म एवं कलायें'**
2. **आचार्य गोपीलाल 'अमर',** दिल्ली : **'Cosmological Details in Jaina Literature'**
3. **डॉ. विश्वनाथ मिश्र,** लाडनूं : **परमाणुवाद और सृष्ट्युत्पत्ति**
4. **डॉ. रत्नलाल जैन,** हांसी : **'वैदिक साहित्य में भगवान् ऋषभदेव'**
5. **डॉ. ब्रजेश कृष्ण,** कुरुक्षेत्र : **'ऋषभदेव की प्रतिहारकालीन प्रतिमाएँ'**
6. **डॉ. भीमसेन जी,** कुरुक्षेत्र : **'जैन दर्शन में अहिंसा और पाणिनि'**
7. **डॉ. सुरेन्द्रमोहन मिश्र,** कुरुक्षेत्र : **'उड़िया भागवत में भगवान ऋषभदेव'**
8. **डॉ. रणवीरसिंह, कुरुक्षेत्र : 'ऋग्वेद में ऋषभ शब्द एवं उसके अर्थ'**
9. **प्रो. इन्दू शर्मा,** निदेशक, कुरुक्षेत्र : **'प्राचीन साहित्य में भगवान् ऋषभदेव'**
10. **डॉ. श्रीकृष्ण शर्मा,** कुरुक्षेत्र : **'वर्तमान में श्रावकाचार की प्रासंगिकता'**
11. **डॉ. चितरंजन कौशल,** कुरुक्षेत्र : **आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का भागवत आधारित अलौकिक चरित्र**

समापन सत्र – 17.1.99, मध्याह्न 2.30 से 4.30 तक, सीनेट हॉल, कुरुक्षेत्र

अध्यक्षता : **प्रो. मुनिलाल रंगा,** कुलपति - कुरुक्षेत्र वि.वि., कुरुक्षेत्र
मुख्य अतिथि : **प्रो. एस. पी. सिंह,** कुलपति - आरा
संचालन : डॉ. रणवीरसिंह, कुरुक्षेत्र

इस सत्र **में ब्र. रंजनाजी** के मंगलाचरण एवं पूज्य उपाध्याय श्री के मंगल आशीर्वचन के अतिरिक्त **डॉ. एस. पी. सिंह,** आरा का **'वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भगवान ऋषभदेव के शैक्षणिक अवदान की प्रासंगिकता'** पर विस्तृत एवं सारगर्भित उद्बोधन हुआ। प्रो. धर्मचन्द्र जैन ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

प्रो. एस. सी. अग्रवाल, मेरठ का आलेख **'जैनाचार एवं पर्यावरण शुद्धि'** तथा **डॉ. धर्मचन्द्र जैन,** कुरुक्षेत्र एवं **डॉ. किरणकला जैन,** कुरुक्षेत्र के आलेख समयाभाव में पठित स्वीकार कर लिये गये।

भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, हस्तिनापुर में की गई घोषणाओं के क्रियान्वयन में यह प्रथम संगोष्ठी अत्यन्त सफल रही। पूज्य उपाध्याय श्री की मांगलिक उपस्थिति ने वि.वि. एवं संगोष्ठी की गरिमा में अभिवृद्धि की।

* सचिव - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,
584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर - 452 001

कुन्दकुन्द भारती में खारवेल भवन का शिलान्यास

'खारवेल कलिंग प्रांत का एक महान प्रतापी सम्राट था, जिसने 2200 वर्ष पूर्व देश से विदेशी हमलावरों को भगाकर देश की रक्षा की तथा भारत के सभी राज्यों को एकसूत्र में बांध विशाल कल्याणकारी राज्य की स्थापना की थी'। ये शब्द उड़ीसा के मुख्यमंत्री श्री जानकीवल्लभ पटनायक ने कुन्दकुन्द भारती के परिसर में आचार्यश्री विद्यानंदजी महाराज एवं मुनिश्री कनकोज्जनंदि जी महाराज के सानिध्य में आयोजित एक भव्य समारोह में 'खारवेल - भवन' का शिलान्यास करने के बाद विशाल जनसभा में कहे।

उन्होंने कहा कि हाथी गुफा के प्राचीन शिलालेख में उसकी विजय पताका का पूरा इतिहास अंकित है। इससे जाहिर है कि उसका शासन कितने बड़े भू - भाग पर फैला था। आंध्र में भी एक शिलालेख मिला है जिसमें खारवेल के प्रतिनिधि शासक का उल्लेख है। इस दिशा में व्यापक खोज की जरूरत है। मुख्यमंत्री ने घोषणा की कि उड़ीसा सरकार सन् 2000 का वर्ष 'खारवेल - वर्ष' के रूप में मनाएगी और भारत के इस सर्वधर्म समभाव के प्रतीक प्रतापी सम्राट के इतिहास की पूरी जानकारी प्रकाश में लायेगी। खारवेल ने जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की सत्य, अहिंसा संस्कृति को आगे बढ़ाया। जैन धर्म भारतीय संस्कृति का सार - तत्व है। इसे छोड़कर भारत की संस्कृति पर विचार किया ही नहीं जा सकता। मुख्यमंत्री ने घोषणा की कि खारवेल भवन के निर्माण में राज्य सरकार पूरा सहयोग देगी।

समारोह के अध्यक्ष साहू रमेशचंद्र जैन ने कहा कि खारवेल की स्मृति में बनने वाला यह भवन भारत के प्राचीन गौरवशाली सांस्कृतिक इतिहास को उजागर करेगा। आचार्यश्री की प्रेरणा से यह एक ऐतिहासिक कार्य हो रहा है। उन्होंने बताया कि 16 से 19 जनवरी 1999 तक भुवनेश्वर में एक संगोष्ठी में विस्तार के साथ खारवेल के संबंध में चर्चा होगी। संपूर्णानन्द संस्कृत विद्यालय के कुलपति डा. मण्डन मिश्र ने इस कार्य को एक ऐतिहासिक प्रसंग बताया और कहा कि आचार्य श्री की प्रेरणा से स्थापित यह भवन कलिंग - संस्कृति का विजय - स्तंभ होगा। उन्होंने कहा कि खारवेल भारतीय संस्कृति के समन्वयकर्ता थे। डा. राजाराम जैन ने सम्राट खारवेल के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए बताया कि देश का संवैधानिक नाम 'भारतवर्ष' सम्राट खारवेल द्वारा लिखाए गए हाथी गुफा के शिलालेख के आधार पर ही रखा गया है।

आचार्यश्री विद्यानंदजी महाराज ने अपने आशीर्वचन में कहा कि 'यह भवन सम्राट खारवेल पर शोध का एक प्रमुख केन्द्र बनेगा। खारवेल ने हिमालय से कन्याकुमारी तक तथा कलिंग से गुजरात तक अपना शासन स्थापित किया, कभी भी आततायी नहीं बना। उसने समस्त धन जनता के कल्याण के लिए खर्च किया। इसीलिए क्षेमराज, वृद्धिराज, भिक्षुराज और धम्मराज उसकी उपाधियां थी। खारवेल ने धर्म के शासन की स्थापना की थी। आचार्यश्री ने संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के उन्नयन की भी प्रेरणा दी। उन्होंने बारामति के श्रेष्ठि श्री माणिकचन्द उगरचन्द शाह को आशीर्वाद दिया जिन्होंने इस भवन के निर्माण के लिए धन दिया है। मुख्यमंत्री ने उन्हें सम्मानित किया। मुख्यमंत्री को इस अवसर पर श्री कुन्दकुन्द भारती के रजत जयंती वर्ष के उपलक्ष में सरस्वती की रजत - मूर्ति भेंट की गई। मुख्यमंत्री ने मेघवाहन सम्राट खारवेल के चित्र वाले केलेण्डर का विमोचन किया। सभा के संचालक डा. सुदीप जैन ने मुख्यमंत्री से अनुरोध किया कि उड़ीसा में प्राकृत - भाषा के विकास के लिए विश्वविद्यालयों में विभाग खोले जाएं। लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ के कुलपति डा. वाचस्पति उपाध्याय ने सभी का आभार व्यक्त किया और कहा कि आचार्यश्री की प्रेरणा से शीघ्र ही विद्यापीठ में प्राकृत - भवन का निर्माण शुरू हो जाएगा। उन्होंने कहा कि हमें अपने वर्तमान को सुरक्षित रखने के लिए अतीत व अनागत को समझना होगा।

साहू रमेशचंद्र जैन से चर्चा में मुख्यमंत्री ने यह आश्वासन दिया कि उड़ीसा में प्राचीन जैन तीर्थ उदयगिरि - खण्डगिरि के दर्शनार्थ आने वाले जैन यात्रियों को कठिनाई न हो और उनके दर्शनों में बाधा न पहुंचे इसके लिए राज्य सरकार शीघ्र व्यवस्था करेगी।

ब्र. कमलाबाई जी को 1998 का रोटरी इंडिया साक्षरता पुरस्कार

शिक्षा प्रसार में उल्लेखनीय योगदान के लिए वर्ष 1998 का रोटरी इंडिया साक्षरता पुरस्कार आदर्श महिला महाविद्यालय - श्रीमहावीरजी (राजस्थान) की संस्थापिका **ब्रह्मचारिणी कमलाबाई जी** को प्रदान किया जाएगा। यह पुरस्कार 9 दिसम्बर को कलकत्ता में साईस सिटी में आयोजित भव्य समारोह में पश्चिम बंगाल के राज्यपाल महामहिम **श्री ए.आर. किदवई** ने प्रदान किया जिसमें संस्था के वर्ल्ड प्रेसीडेन्ट **श्री इलेक्ट केरियो रेविज्जा** भी विशेष रूप से सम्मिलित थे। पुरस्कार में प्रशस्ति पत्र के साथ दो लाख रुपये की राशि भी प्रदान की गई।

पुरस्कार का निर्णय विख्यात विधिवेत्ता, सांसद **श्री एल.एम. सिंघवी** की अध्यक्षता में गठित एक निर्णायक मंडल की बैठक में लिया गया जिसमें अन्य सदस्य **श्री टी.एन. चतुर्वेदी** - सांसद, **डा. एल. मिश्रा** - आई.ए.एस., सचिव - श्रम मंत्रालय, **श्री एच.के. दुआ** - पत्रकार एवं **श्रीमती देविका सिंह** सम्मिलित थे।

दिवाकर ग्रन्थालय का शुभारम्भ

नवगठित शैक्षणिक सामाजिक संगठन वर्धमान सेवा केन्द्र, इन्दौर ने अपने एक प्रकल्प के रूप में इन्दौर नगर के कंचनबाग क्षेत्र में सुविकसित रतलाम कोठी परिसर में ज्ञान पंचमीं (25.10.98) के शुभ दिवस पर दिवाकर ग्रन्थालय की स्थापना की। इस अवसर पर आयोजित एक सभा की अध्यक्षता स्थानकवासी जैन श्रावक संघ के अध्यक्ष प्रसिद्ध उद्योगपति श्री नेमीनाथ जैन, अध्यक्ष - प्रेस्टिज उद्योग समूह ने की। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि वरिष्ठ पत्रकार एवं नईदुनिया के प्रमुख **श्री अभय छजलानी** थे। विशिष्टं अतिथि के रूप में उद्योगपति **श्री जयंती भाई संघवी** तथा **श्री शांतिलालजी धाकड़** उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन **श्री हस्तीमल झेलावत** ने किया।

कार्यक्रम के शुभारम्भ में अपने उद्गार व्यक्त करते हुए पार्श्वनाथ विद्यापीठ के निदेशक एवं बहुश्रुत विद्वान **डॉ. सागरमल जैन** ने कहा कि 60 वर्ष पूर्व एक छोटे से कक्ष में प्रारम्भ किया गया पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान निरन्तर विकसित होते हुए आज पार्श्वनाथ विद्यापीठ के रूप में उच्च स्तरीय शोध एवं अनुसंधान केन्द्र के रूप में ख्याति प्राप्त कर रहा है। इस संस्थान की एक शाखा के रूप में ही यहाँ पार्श्वनाथ विद्यापीठ की स्थापना की जा रही है। निकट भविष्य में यह भी संभव है कि यह शाखा ही प्रमुख केन्द्र बन जाये।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय का प्रसन्नतापूर्वक अवलोकन करते हुए आचार्य श्री पुष्पदंतसागरजी महाराज

उदासीन आश्रम में पुस्तक विक्रय केन्द्र की स्थापना

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, इन्दौर गत 85 वर्षों से विभिन्न माध्यमों से समाज सेवा कर रहा है। 1987 में इसी के अन्तर्गत कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की स्थापना की गई थी जिसके अन्तर्गत सुविधा सम्पन्न पुस्तकालय का विकास, त्रैमासिक शोध पत्रिका अर्हत् वचन का प्रकाशन, जैन पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थलों का सर्वेक्षण एवं आख्याओं का प्रकाशन एवं परीक्षा संस्थान का संचालन किया जा रहा है।

पुस्तक विक्रय केन्द्र का शुभारम्भ करते हुए श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल

आश्रम की नवीन गतिविधियों के अन्तर्गत दिनांक 27.11.98 को **पूज्य आचार्य श्री पुष्पदन्तसागरजी महाराज** के मंगल सान्निध्य में आश्रम ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल के करकमलों से पुस्तक विक्रय केन्द्र का शुभारम्भ हुआ। आश्रम के अधिष्ठाता ब्र. अनिल जैन ने बताया कि इन्दौर महानगर में जैन धर्म के साहित्य के बिक्री केन्द्र की आवश्यकता का दीर्घकाल से अनुभव किया जा रहा है, इस केन्द्र की स्थापना से इस अभाव की पूर्ति होगी। इस केन्द्र पर देश के सभी स्थानों एवं सभी संघों से प्रकाशित सत्साहित्य सुलभ कराया जायेगा। अब तक लगभग 1,00,000 = 00 रु. के साहित्य की बिक्री की जा चुकी है।

सभी पुस्तक प्रकाशन संस्थाओं एवं पूज्य मुनिसंघों से सविनय निवेदन है कि वे अपने द्वारा प्रकाशित उपलब्ध साहित्य की 1 - 1 प्रति (नमूना प्रति) व्यावसायिक शर्तों सहित भिजवाने का कष्ट करें जिससे विक्रय केन्द्र पर उनको आवश्यकतानुसार मंगाकर जन सामान्य को सुलभ कराया जा सके। नमूना प्रतियाँ विक्रय नहीं की जायेंगी, उन्हें पुस्तकालय में सुरक्षित रखा जायेगा।

राष्ट्र की धड़कनों की अभिव्यक्ति
हिन्दी का प्रमुख राष्ट्रीय दैनिक
नवभारत टाइम्स

प्रो. ठुकराल ज्ञानपीठ में

टुलेन विश्वविद्यालय अमेरिका के प्राध्यापक प्रो. विनोद ठुकराल गत 2 दिसम्बर 98 को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में पधारे। ज्ञानपीठ के अध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल एवं निदेशक प्रो. नवीन सी. जैन ने प्रो. ठुकराल का स्वागत किया। सचिव डॉ. अनुपम जैन ने कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की गत 11 वर्षों की उपलब्धियों एवं योजनाओं की जानकारी देते हुए उन्हें ज्ञानपीठ की शोध पत्रिका अर्हत् वचन के नवीन अंक एवं ज्ञानपीठ के प्रकाशनों की 1 - 1 प्रति सादर भेंट की।

बायें से क्रमश: डॉ. अनुपम जैन, प्रो. ठुकराल, श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल, प्रो. पी. एन. मिश्र, प्रो. नवीन सी. जैन, डॉ. प्रकाशचन्द जैन एवं श्री सूरजमल बोबरा

देवी अहिल्या विश्वविद्यालय के प्रबन्ध अध्ययन संस्थान के निदेशक प्रो. प्रभुनारायण मिश्र ने प्रो. ठुकराल को बताया कि ज्ञानपीठ की अकादमिक गतिविधियों एवं शोध के प्रति प्रतिबद्धता को देखते हुए विश्वविद्यालय ने इसे कला एवं विज्ञान संकाय के 5 विषयों में पी.एच.डी. कराने हेतु शोध की मान्यता प्रदान की है।

अध्यक्ष श्री कासलीवाल ने जैन समाज द्वारा संचालित अन्य संस्थाओं तथा भारत में जीव दया के क्षेत्र में कार्यरत संस्थाओं की गतिविधियों एवं अहिंसा की व्यावहारिकता पर प्रकाश डाला जिससे प्रो. ठुकराल को विशेष प्रसन्नता हुई।

इस अवसर पर प्रसिद्ध जैन विद्वान डॉ. प्रकाशचन्द जैन एवं श्री सूरजमल बोबरा भी उपस्थित थे। प्रो. ठुकराल ने निकट भविष्य में संभावित पुन: भारत आगमन के समय ज्ञानपीठ में पधारने की इच्छा व्यक्त की।

आज से 2500 वर्ष पूर्व सराक जाति जैन धर्म से विमुख हो गई थी, लेकिन उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज ने उन्हें पुन: स्थापित करने एवं जैन धर्म की मुख्य धारा में लाने का बीड़ा उठाया है।

मेरठ - 12.2.95 **साहू अशोककुमार जैन**

क्षुल्लक जिनेन्द्रवर्णी स्मृति व्याख्यानमाला' 98

सभी धर्मों का सार - श्रेष्ठ आचरण

-मेजर बलवीरसिंह भसीन

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा आयोजित क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी स्मृति व्याख्यानमाला - 98 के अन्तर्गत वर्ष 1998 का व्याख्यान दिनांक 19.12.98 को **मेजर बलवीरसिंह भसीन,** कुलपति - मगध वि.वि., बोधगया ने *'वर्तमान युग में जैन धर्म के सिद्धान्तों की उपयोगिता'* विषय पर दिया। कार्यक्रम की अध्यक्षता चौ. चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ के कुलपति **प्रो. दुर्गाप्रसाद तिवारी** ने की। विशिष्ट अतिथि के रूप में वीर कुँवरसिंह वि.वि., आरा के कुलपति **प्रो. सुरेशप्रसाद सिंह,** तिलकामांझी वि.वि., भागलपुर के कुलपति **प्रो. शैलेन्द्रनाथ श्रीवास्तव,** काशी दरभंगा वि.वि. के कुलपति **प्रो. एस. एन. प्रसाद,** मैसूर वि.वि. के **प्रो. एस. एन. हेगड़े,** होल्कर विज्ञान महाविद्यालय के प्राचार्य **प्रो. राम श्रीवास्तव, पद्मश्री बाबूलाल पाटोदी,** सर्वश्री **प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल, माणिकचन्द पाटनी, अशोक बड़जात्या** आदि विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित थे।

मेजर बलवीरसिंह भसीन, कुलपति - मगध विश्वविद्यालय, बोधगया उद्बोधन देते हुए

कार्यक्रम के अन्तर्गत अपने उद्बोधन में प्रो. भसीन ने कहा कि हिन्दू, मुसलमान, जैन, बौद्ध, ईसाई आदि सभी धर्मों में सत्य-अहिंसा की बात कही गई है। गुरुवाणी के उपदेश जैनधर्म से भिन्न नहीं है। श्रेष्ठ आचरण एवं दुखियों की सेवा ही सभी धर्मों का सार है।

प्रो. भसीन ने भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन का स्मरण करते हुए कहा कि हस्तिनापुर में मुझे जैनधर्म को जानने एवं पूज्य माताजी का आशीर्वाद प्राप्त करने का अवसर मिला। उनके आशीर्वाद से मुझे यह दायित्व मिला है क्योंकि हस्तिनापुर में उन्होंने ही मुझे सर्वप्रथम कुलपति के रूप में सम्बोधित किया था। मैं इस पद पर रहते हुए जैनधर्म के बारे में पाठ्य पुस्तकों में प्रचलित भ्रांतियों के निरसन का प्रयास करूंगा।

प्रो. एस. पी. सिंह, कुलपति - आरा ने अपने वक्तव्य में जैनधर्म की प्राचीनता का प्रतिपादन करते हुए भगवान ऋषभदेव को जैनधर्म का प्रणेता एवं प्रथम तीर्थंकर बताया।

अध्यक्षीय उद्बोधन में प्रो. तिवारी ने कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की प्रशंसा करते हुए आशा व्यक्त की कि देश की अन्य संस्थाओं को इसका अनुसरण कर जैनधर्म एवं दर्शन पर शोधकार्य को विश्वविद्यालयों के साथ जुड़कर विकसित करना चाहिये।

प्रो. सुरेशप्रसाद सिंह, कुलपति - आरा उद्बोधन देते हुए

प्रो. दुर्गाप्रसाद तिवारी, कुलपति - मेरठ, कुलपति सम्मेलन के कार्य विवरण की पुस्तिका का विमोचन करते हुए। सामने खड़े हैं प्रो. राम श्रीवास्तव (प्राचार्य होल्कर विज्ञान महाविद्यालय), इन्दौर एवं डॉ. अनुपम जैन

इस अवसर पर डॉ. शास्त्री द्वारा लिखित पुस्तक *'The jain Sanctuaries of Fortress of Gwalior'* का लोकार्पण किया। भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन के कार्य विवरण की पुस्तिका का विमोचन भी प्रो. तिवारी ने किया। ग्वालियर की पुस्तिका के प्रकाशन हेतु अर्थ सहयोग देने के लिये रमादेवी बिहारीलाल दि. जैन फाउण्डेशन, ब्लूफील्ड - अमेरिका की प्रतिनिधि डॉ. स्नेहरानी जैन, 'जैनधर्म : विश्वधर्म' पुस्तक के सृजन हेतु पंडित नाथूराम डोंगरीय एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ को सम्पूर्ण कम्प्यूटर सेट, प्रिंटर आदि उपलब्ध कराने हेतु श्री मानमलजी बोबरा का सम्मान किया गया। मंगलाचरण प्रो. कमलकुमार जैन ने किया तथा आभार माना श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल ने। कार्यक्रम का संयोजन एवं संचालन डॉ. अनुपम जैन ने किया।

श्री मानमलजी बोबरा का सम्मान करते हुए प्रो. डी. पी. तिवारी, कुलपति - मेरठ

पं. नाथूरामजी डोंगरीय का सम्मान करते हुए प्रो. शैलेन्द्रनाथ श्रीवास्तव, कुलपति - भागलपुर

डॉ. स्नेहरानी जैन का सम्मान करते हुए श्रीमती सिंह, आरा एवं श्रीमती पुष्पा कासलीवाल, इन्दौर

क्षुल्लक श्री जिनेन्द्र वर्णी

व्यक्तित्व

जन्म : मई 1922 में पानीपत (हरियाणा) में। पिता बाबू जयभगवानजी एक ख्यातिप्राप्त एडवोकेट, जैन सिद्धान्त के मर्मज्ञ विद्वान और उच्च कोटि के विचारक।

गृहस्थ जीवन : 1938 में दुर्भाग्य से क्षय रोग के कारण वर्णीजी का एक फेफड़ा सदा के लिये बन्द कर दिया गया। डाक्टरों ने मांसाहार की सलाह दी, किन्तु जीवन के मूल्य पर मांसाहार स्वीकार नहीं किया। इस संकल्प शक्ति ने जीने की एक अपराजेय शक्ति प्रदान की। अपनी दुर्बल काया के बावजूद प्रयत्नपूर्वक इलेक्ट्रिक एवं वायरलेस प्रोद्योगिकी में उच्च शिक्षा प्राप्त की। 1952 में वे कलकत्ता में एम.ई.एस.कान्ट्रेक्टर हो गये।

वैराग्य : साधनों की सुलभता तथा अच्छे व्यापार के बावजूद सांसारिक माया में मन न रमा तो दोनों छोटे भाइयों को कामकाज हस्तांतरित कर 1957 में आत्म कल्याण हेतु घर से निकल पड़े।

अध्यात्म : सिद्धान्त शास्त्रों के अनवरत स्वाध्याय, मनन और चिन्तन के कारण एक ही वर्ष में शास्त्र सभा में प्रवचन करने की कुशलता प्राप्त कर ली। प्रवचन हेतु अनेक नगरों का भ्रमण। पश्चात् ईसरी में आध्यात्मिक संत क्षुल्लक गणेप्रसादजी वर्णी का सान्निध्य।

सरस्वती की आराधना : सन् 1961 में क्षुल्लक दीक्षा। कालान्तर में अस्वस्थता के कारण क्षुल्लक अवस्था को सरस्वती की आराधना में अनुकूल न देख, सत्यनिष्ठा पूर्वक पुन: ब्रह्मचर्य अवस्था धारण, लेकिन जीवन पूर्ववत पूर्ण रूप से विरक्त और नि:स्पृह। ज्ञानपिपासु वृत्ति। सर्वथा अनाग्रही और वैज्ञानिक दृष्टि।

समाधिमरण : 12 अप्रैल 1983 को ईसरी में आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के निर्देशन में सल्लेखना व्रत धारण और क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर 24 मई 1983 को समाधिमरण।

कृतित्व

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष : जैन शास्त्रों के प्रमुख पारिभाषिक शब्दों, व्यक्तिवाचक, स्थानवाचक आदि संज्ञाओं का अकारादि क्रम में संग्रह (पाँच भाग)।

शान्ति पथ प्रदर्शक : जैनधर्म का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विवेचन, जो आबाल-गोपाल की समझ में आ सके।

दर्पण : जैन दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त अनेकान्तवाद को स्पष्ट करने वाले अनेक नयों का प्रांजल स्पष्टीकरण।

समणसुत्तं : समस्त जैन समाज द्वारा मान्य एक संकलित ग्रंथ।

वर्णी दर्शन : क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी की जीवनी 'मेरी जीवन गाथा' का संक्षिप्त किन्तु परिपूर्ण संकलन।

कर्म सिद्धान्त : कर्मबन्ध के सम्बन्ध में एक प्रामाणिक दस्तावेज

कर्म रहस्य : कर्म की नाना अवस्थाओं एवं उनसे मुक्ति के सूत्र।

कुन्दकुन्द दर्शन : आचार्य कुन्दकुन्द का संक्षिप्त जीवन दर्शन।

सर्व धर्म समभाव : सभी धर्मों पर एक जिज्ञासु का दृष्टिकोण।

सत्य दर्शन : वेदान्त दर्शन मान्य सृष्टि की महत्वपूर्ण व्याख्या।

पदार्थ विज्ञान : जैन दर्शन मान्य छह द्रव्यों का वैज्ञानिक विश्लेषण।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ व्याख्यानमाला

जैन साहित्य से भारतीय वाङ्मय समृद्ध हुआ

–प्रो. शैलेन्द्रनाथ श्रीवास्तव

''जब लेखन और मुद्रण के साधन उपलब्ध नहीं थे तब ज्ञान के विस्तार का माध्यम संभाषण और श्रवण परम्परा बनी। श्रमण परम्परा और संस्कृति बहुत प्राचीन है।'' उक्त विचार तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. शैलेन्द्र श्रीवास्तव ने कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा दिनांक 20.2.98 को आयोजित कुन्दकुन्द व्याख्यान माला के 11वें व्याख्यान में अध्यक्षीय उद्‌बोधन में व्यक्त किये।

उन्होंने कहा कि - 'भारतीय वाङ्मय श्रमण अर्थात् जैन साहित्य से समृद्ध हुआ है। तात्कालीन प्रचलित भाषा प्राकृत, पाली और अपभ्रंश के माध्यम से जैन धर्म जनधर्म बन गया। धर्म सनातन है। भौतिकता की प्रयोगशाला विज्ञान है और आत्मा की प्रयोगशाला धर्म है। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में व्याख्यान के माध्यम से विद्वानों को और अधिक सीखने का अवसर दिया जाता है क्योंकि कोई कुलपति सीखने के लिये किसी वि.वि. में प्रवेश तो प्राप्त कर नहीं सकता। अत: ज्ञानपीठ बधाई की पात्र है।''

अध्यक्षीय उद्‌बोधन देते हुए प्रो. शैलेन्द्रनाथ श्रीवास्तव

कार्यक्रम के प्रमुख वक्ता डॉ. भागचन्द 'भास्कर', अध्यक्ष - पाली प्राकृत विभाग, नागपुर वि.वि., नागपुर ने वर्तमान युग में जैनधर्म विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि संस्कृति को समझने के पहले परम्परा को समझना होगा। ऋषभदेव का उल्लेख ऋग्वेद आदि अन्य ग्रंथों में है। अत: सिद्ध है कि जैन उससे प्राचीन है। संख्या में वे अधिक होते हैं जो संयम का पालन नहीं कर पाते। त्याग वृत्ति कम होती है। किन्तु जैनधर्म त्याग प्रधान है, फलत: जैन संख्या में कम हैं। इस धर्म में व्यक्ति की नहीं बल्कि व्यक्तित्व की पूजा है। जैन धर्म में नारी जाति का महत्वपूर्ण स्थान है। नारी शिक्षा ब्राह्मी और सुन्दरी से प्रारम्भ हुई है।

मंगलाचरण डॉ. प्रकाशचन्द जैन ने किया। संचालन एवं संयोजन डॉ. अनुपम जैन ने किया।

ज्ञानपीठ के प्रांगण से

अतिथियों का स्वागत प्रो. नवीन सी. जैन (मानद् निदेशक), प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल (मेरठ), श्री अरविन्दकुमार जैन (प्रबन्धक) एवं श्री रमेश कासलीवाल (संपादक - वीर निकलंक) ने किया।

प्रो. भागचन्द्र 'भास्कर' व्याख्यान देते हुए

व्याख्यान माला के मंच का एक दृश्य

मंगल आशीर्वचन

परम पूज्य आचार्यों के कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय, इन्दौर में पदार्पण के समय प्रदत्त आशीर्वचन

जैनाचार्य श्री पुष्पदंतसागरजी महाराज

जिनवाणी सरस्वती की उपासना का मन्दिर देखकर मन प्रसन्न हुआ। मैंने अपने जीवन में वृहद् जिनवाणी का मन्दिर देखा। जो मैंने देखा, जो व्यवस्था पाई, जो कार्यकर्ताओं में समर्पण देखा; उससे ऐसा प्रतीत हुआ कि संस्कृति की सुरक्षा में यदि इस प्रकार का समर्पण नगरों में होता रहा तो पञ्चम काल के अन्तिम समय तक यह यात्रा अक्षुण्ण रूप से चलती रहेगी। अनुपमजी का समर्पण, सहयोग, स्थितत्व अनुकरणीय और अनुमोदनीय है। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ का उत्तरोत्तर विकास हो, ऐसी मेरी भावना है।

28.11.98 **आचार्य पुष्पदन्तसागर**

प्रज्ञाश्रमण आचार्य श्री देवनन्दिजी महाराज

भारतीय वाङ्मय की रचनात्मक सुरक्षा का कार्य कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर में हो रहा है। यह प्रत्यक्ष में अवलोकन करके आत्म संतुष्टि हुई है। शोधार्थियों के लिये सर्वांग रूप से साहित्य को उपलब्ध कराना कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की विशेषता है।

वयोवृद्ध अनुभवी देव शास्त्र गुरु के अनन्य आराधक, समाज शिरोमणि, धर्मानुरागी देवकुमारसिंहजी कासलीवाल के साथ ज्ञानपीठ में धार्मिक चर्चाएँ व उनका देश, समाज, संस्कृति व ज्ञान के संवर्धन का उत्साह देखकर प्रसन्नता हुई। जैनधर्म के विकास की संभावनाएँ यहाँ निश्चित रूप से उज्जवल हैं। मैं ज्ञानपीठ के संवर्धन की सदैव शुभकामनाएँ रखता हूँ।

शुभाशीर्वाद -

31 दिसम्बर 1998 **प्रज्ञाश्रमण आचार्य देवनन्दि**

ज्ञानपीठ के प्रांगण से

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय शोधकार्यों का वास्तविक ज्ञानपीठ बन सकता है। म.प्र. से सम्बन्धित जैन संदर्भों का अभाव प्रतीत हुआ। पं. आशाधर एवं ग्वालियर के मुनि रइधू तथा ग्वालियर की जैन चित्रकला पर संदर्भ उपलब्ध नहीं हो सके। (सम्बद्ध साहित्य पुस्तकालय में उपलब्ध है - सम्पादक)

12.10.98

■ **श्री आर.एस. गर्ग**
सेवानिवृत्त - निदेशक, पुरातत्व एवं संग्रहालय,
इन्दौर

मुझे कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के दर्शन का सौभाग्य मिला। पुस्तकों का विषयबद्ध संग्रह सराहनीय है। मुझे हर्ष है कि यहां से ग्रन्थ पढ़कर लोग जैन संस्कृति को प्रकाश में ला रहे हैं।

7.11.98

■ **डा. अरविन्द जैन**
स्वास्थ्य राज्यमंत्री उ.प्र., **लखनऊ**

आज कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ का काम एवं पुस्तकालय देखा। बहुत बढ़िया काम है, इसकी बहुत जरूरत है। आप बहुत - बहुत बधाई के पात्र हैं।

7.11.98

■ **श्री मिलिन्द फड़े**
केन्द्रीय संगठन मंत्री - दि. जैन महासमिति,
15, भावना भांडारकर रोड, **पुणे - 4**

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ जैसी संस्थाओं की जैन समाज को अत्यन्त आवश्यकता है। ऐसी ही संस्थाओं के माध्यम से जैनधर्म एवं संस्कृति की रक्षा हो सकेगी।

7.11.98

■ **प्रकाशचन्द जैन बड़जात्या**
7, प्रगति, श्रीधर नगर, चिंचवड़,
पुणे - 411033

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के कार्यकलापों तथा उसके पुस्तकालय को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। यह संस्था जहां जैन धर्म के प्रचार - प्रसार में सहायक है वहीं जैन धर्म पर शोधकार्यों हेतु यह पुस्तकालय अत्यन्त ही लाभप्रद तथा उपयोगी होगा।

8.11.98

■ **डा. विमल कुमार जैन**
रीडर - भौतिकी विभाग, सी.एल. जैन कॉलेज
फिरोजाबाद - 283203

It was a great pleasure to come here and meet the esteemed members of staff of this organisation. I am particularly impressed with Shri Deo Kumar Singh Kasliwal's level of knowledge about India's problems. I am enriched by comming here. I wish this Institute a long life.

■ **Prof. Vinod K. Thukral**
Tulane University
U.S.A.

ज्ञानपीठ के प्रांगण से

इस पुस्तकालय में जैनधर्म एवं साहित्य विषयक शोध प्रबन्धों को देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। अन्वेषण, गवेषणा, अनुसंधान से ही प्राचीन नवीन और प्रासंगिक बनता है। आशा है कि अन्य संस्थानों को भी इससे प्रेरणा मिलेगी।

19.12.98

■ **प्रो. शैलेन्द्रनाथ श्रीवास्तव**
कुलपति - तिलकामांझी भागलपुर वि.वि.,
भागलपुर (बिहार)

मैं दिनांक 19.12.98 को इस शोध संस्थान में आया। शोध का स्तर बहुत ही अच्छा था। यहाँ के सभी लोग बहुत अच्छे थे। मैं इसके उज्जवल भविष्य की शुभकामना करता हूँ।

19.12.98

■ **प्रो. सुरेशप्रसाद सिंह**
कुलपति - वीर कुँवरसिंह वि.वि.,
आरा (बिहार)

इन्दौर में कुलपति सम्मेलन में भाग लेने आया और आज कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में आकर लगा कि यात्रा सफल हो गई। कर्मधाम की यात्रा तीर्थ और ज्ञान - धाम में बदल गई। गुरु महाराज से प्रार्थना है कि इस ज्ञानपीठ का ज्ञान प्रकाश का दीपक हमेशा जलता रहे, चमकता रहे और इस नगरी के ही नहीं, समस्त संसार के लोगों को प्रकाश देते रहें।

19.12.98

■ **मेजर बलवीरसिंह भसीन**
कुलपति - मगध वि.वि., **बोधगया** (बिहार)

शोध निबन्धों को देखकर ऐसा लगा जैसे जैनधर्म की मान्यतायें विश्वविद्यालय से जुड़ रही हैं। अत्यन्त सराहनीय प्रयास है। और भी ऐसे प्रयोग हों, ऐसी कामना है।

19.12.98

■ **प्रो. दुर्गाप्रसाद तिवारी**
कुलपति - चौधरी चरणसिंह वि.वि., **मेरठ**

सर्वथा दर्शनोऽयं ज्ञानतीर्थ:

19.12.98

■ **प्रो. काशीनाथ मिश्र**
कुलपति - का. सि. दरभंगा संस्कृत वि.वि.,
दरभंगा (बिहार)

I am very much impressed with such religious institutions.

19.12.98

■ **Prof. S. N. Prasad**
V.C. - Jai Prakash Univ., **Chhapra**

Spirituality and Spiritual values have been the hallmarks of our philosophy and I am delighted that Kundakunda Jñānapītha is rendering a yeoman's service to mankind on thses lines.

19.12.98

■ **Prof. S.N. Hegde**
V.C. - Mysore University, **Mysore**

ज्ञानपीठ के प्रांगण से

ज्ञानपीठ के प्रकाशनों का अवलोकन करते हुए कुलपतिगण

प्रो. ए. ए. अब्बासी का सम्मान करते हुए श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परामर्शदात्री समिति की बैठक का दृश्य

वर्ष - 11, अंक - 1, जनवरी 99, 81 - 96

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन

जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर), 4 - 6 अक्टूबर 1998

कार्य विवरण

■ डा. अनुपम जैन *

परम पूज्य गणिनीप्रमुख **आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी** के ससंघ सान्निध्य में दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर एवं चौधरी चरणसिंह वि.वि., मेरठ के संयुक्त तत्वावधान में 4 - 6 अक्टूबर 98 के मध्य त्रिदिवसीय भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन संपन्न हुआ। इस सम्मेलन के 6 सत्रों में 20 कुलपति, पूर्वकुलपति, कुलपति प्रतिनिधि तथा 111 विद्वान सम्मिलित हुए। इसके अतिरिक्त **प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामतीजी** तथा **क्षुल्लक श्री मोतीसागरजी** सहित 18 संतों एवं व्रती विद्वानों / बहनों की गौरवमयी उपस्थिति सम्मेलन की गरिमा में अभिवृद्धिकारक रही।

सम्मेलन के माध्यम से देश के अकादमिक जगत को नेतृत्व प्रदान करने वाले माननीय कुलपतियों को जैन विद्या के अध्येताओं के साथ बैठकर विचार विमर्श करने तथा अपने - अपने विश्वविद्यालयों में भगवान ऋषभदेव की शिक्षाओं एवं भारतीय संस्कृति पर उनके व्यापक प्रभाव के विश्लेषण हेतु योजनाओं के निर्माण का अवसर प्राप्त हुआ। सम्मेलन के समापन अवसर पर समागत कुलपतियों की ओर से व्यक्त किए गए **प्रो. बलबीरसिंह भसीन**, प्रतिकुलपति - मगध वि.वि., बोधगया (बिहार) के विचार दृष्टव्य हैं।

'इस सम्मेलन से हम लोगों की जैन धर्म के प्रति बहुत सारी भ्रांतियाँ दूर हुई हैं। आज हम इसके वास्तविक तथ्य से परिचित हुए हैं। अब मैं निश्चित रूप से राष्ट्रीय शिक्षा विभाग से संपर्क करके सरकारी पाठ्य पुस्तकों में निहित भ्रांतियों को दूर कराऊँगा। मेरा इस जम्बूद्वीप (दि. जैन त्रिलोक शोध) संस्थान से अनुरोध है कि आप हम लोगों को जोड़े रखें तथा इस सम्मेलन का समापन करके इतिश्री न कर दें, क्योंकि आपके इस परिश्रम एवं आर्थिक व्यय के दूरगामी परिणाम शीघ्र ही सामने आऐंगे।'

सम्मेलन के विभिन्न सत्रों की संक्षिप्त आख्या निम्नवत् है।

दिनांक 4.10.98 मध्यान्ह 2.00 - 4.30 - प्रथम सत्र - उद्घाटन सत्र

मुख्य अतिथि - सांसद श्री राजेश पायलट, पूर्व केन्द्रीय मंत्री - भारत

अध्यक्षता - सांसद श्री धनंजयकुमार, पूर्व केन्द्रीय मंत्री - भारत

विशिष्ट अतिथि - श्री प्रदीपकुमार सिंह कासलीवाल, राष्ट्रीय अध्यक्ष - दि. जैन महासमिति
श्री माणिकचंद पाटनी, राष्ट्रीय महामंत्री - दि. जैन महासमिति

मंगलाचरण - पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागरजी महाराज, जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर)

संचालन - कर्मयोगी ब्रह्मचारी रवीन्द्रकुमार जैन, अध्यक्ष - जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर)

जम्बूद्वीप के पीठाधीश **क्षु. मोतीसागरजी** ने मंगलाचरण के उपरांत देश के सुदूर अंचलों से पधारे माननीय कुलपतियों का अभिनंदन करते हुए उनका आह्वान किया कि वे युगपुरुष भगवान ऋषभदेव की शिक्षाओं को जन - जन तक पहुँचाएँ क्योंकि वे ही ऐसा करने में सक्षम है। जैन धर्म के 24 तीर्थंकरों का जन्म उत्तर भारत में हुआ किन्तु उपदेशों का प्रचार करने वाले महान आचार्यों का जन्म दक्षिण भारत में हुआ। यह एक सुखद संयोग है कि आज उत्तर - दक्षिण दोनों भागों के अनेक कुलपतिगण तथा देश के लगभग सभी प्रांतों से पधारे माननीय विद्वत् जन मंच पर उपस्थित हैं।

* मंत्री - भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, जम्बूद्वीप - हस्तिनापुर - 250 404 (मेरठ),
निवास - ज्ञानछाया, डी - 14, सुदामानगर, इन्दौर - 452 009

मंगलाचरण के पश्चात् समागत मुख्य अतिथि, समारोह अध्यक्ष एवं समस्त विशिष्ट अतिथियों का स्वागत चौधरी चरणसिंह वि.वि. मेरठ के कुलपति **प्रो. डी. पी. तिवारी** एवं जम्बूद्वीप संस्थान के पदाधिकारियों ने प्रतीक चिन्ह एवं केशरिया अंगवस्त्र समर्पण तथा माल्यार्पण करके किया। इस शुभ अवसर पर कुलपति सम्मेलन समारोह को अर्थांजलि समर्पित करने वाले श्रेष्ठी **श्री राजकुमार जैन (वीरा बिल्डर्स)**, दिल्ली का भव्य स्वागत मुख्य अतिथि **श्री राजेश पायलट** के करकमलों से किया गया तथा दिगम्बर जैन महासमिति के राष्ट्रीय अध्यक्ष **श्री प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल** का स्वागत सांसद **श्री धनंजयकुमार जैन** के द्वारा हुआ।

समागत कुलपतियों का स्वागत करते हुए चौ. चरणसिंह वि.वि. के कुलपति प्रो. दुर्गा प्रसाद तिवारी ने कहा कि 'इस परिसर के विकास एवं व्यवस्था के लिए उत्तरदायी दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान की रुचि प्रारंभ से ही प्राचीन भारतीय भाषाओं के अध्ययन, ग्रंथों के अनुवाद कराने, तुलनात्मक अध्ययन एवं प्रकाशन में रही है तभी तो यह संस्थान अब तक 160 ग्रंथों की लाखों प्रतियों का प्रकाशन कर चुका है। 1980 से यह निरंतर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन करता आ रहा है। इस संस्थान द्वारा जैन विद्याओं के अध्ययन हेतु जैसा उत्कृष्ट कार्य किया जा रहा है वैसा मैंने अन्यत्र कहीं नहीं देखा। सन् 1982 में जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति सेमिनार, 1985 में जैन गणित एवं त्रिलोक विज्ञान पर अन्तर्राज्यीय सेमिनार, 1992 में अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र निर्माण संगोष्ठी, 1995 में आर्यिका ज्ञानमती साहित्य संगोष्ठी के आयोजन में वि.वि. के गणित विभाग के प्राध्यापक एवं विज्ञान संकायाध्यक्ष डा. सुरेशचंद अग्रवाल तथा इसी वि.वि. के शोध छात्र रहे डा. अनुपम जैन का विशेष सहयोग रहा है। मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता है कि डा. अनुपम जैन ने प्रो. अग्रवाल के निर्देशन में हमारे ही वि.वि. से जैन गणित के क्षेत्र में उत्कृष्ट शोध कार्य किया है। पारस्परिक सहयोग की इस लंबी श्रृंखला को स्थायित्व देने के लिए मेरी यह इच्छा है कि इस संस्थान की शोधपीठ को वि.वि. द्वारा गठित समिति की अनुशंसा पर शोध केन्द्र की मान्यता प्राप्त हो। वि.वि. द्वारा मान्य औपचारिकताओं को पूर्ण कर इस संस्थान की शोधपीठ कार्यपरिषद की सहमति से शीघ्र वि.वि. द्वारा मान्य शोधपीठ बन जाए इसमें मेरी सहमति है। मेरी यह भी भावना है कि इस वि.वि. के भावी विकास कार्यक्रमों के अंतर्गत यहाँ महिला अध्ययन का संस्थान विकसित हो एवं उसके अंतर्गत साहित्य के माध्यम से राष्ट्र एवं समाज की अप्रतिम सेवा करने वाली गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी के साहित्यिक अवदान पर विशेष अध्ययन सम्पन्न हो। यदि जैन समाज का वि.वि. को सहयोग प्राप्त हुआ तो वि.वि. में जैन विद्याओं के अध्ययन एवं अनुसंधान के लिए एक स्वतंत्र केन्द्र स्थापित कर दिया जाए। संस्थान के प्रबन्धकों ने बताया है कि इस सम्मेलन में जैन धर्म की प्राचीनता, प्रासंगिकता, विश्व की वर्तमान समस्याओं के समाधान में जैन जीवन पद्धति की उपादेयता पर चर्चा की जाएगी। मुझे विश्वास है कि समागत विद्वत् जन इन प्रश्नों पर गंभीरता से कुछ ठोस निष्कर्ष निकालेंगे।

माननीय कुलपति जी के इस प्रस्ताव पर सकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए संघपति **लाला महावीर प्रसाद जैन** ने शोधपीठ के सर्वसुविधायुक्त भवन के निर्माण हेतु 1,06,565 रु. के अनुदान की घोषणा की एवं इसी श्रृंखला को आगे बढ़ाते हुए अनेक श्रेष्ठियों ने 6565 रू. देने की स्वीकृति दी। लाला महावीरप्रसादजी जैन दिल्ली ने दीप प्रज्वलित कर नवस्थापित शोधपीठ का औपचारिक शुभारम्भ किया।

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि शिक्षा के आदि प्रवर्तक भगवान ऋषभदेव अपनी पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी को अंक विद्या और लिपि विद्या लिखकर विद्या का शुभारम्भ कर रहे हैं। (भगवान ऋषभदेव की मूर्ति ब्राह्मी और सुन्दरी को विद्याध्ययन कराते हुए वहाँ विराजमान थी) अत: कुलपिता विराजमान हैं। कुलगुरु के रूप में साक्षात सरस्वती की प्रतिमूर्ति पूज्य ज्ञानमती माताजी विराजमान हैं और दूर-दूर से आये हुए कुलपति सभा में विद्यमान हैं। अत: त्रिवेणी का संगम यहाँ प्राप्त हुआ है। आदिब्रह्मा के पुत्र भरत के नाम पर

ही इस देश का नाम भारत पड़ा और यह भारत एक महान देश है। जिस प्रकार से किसी बगीचे में बहुत सारे फूल खिलते हैं, कुशल माली उन फूलों का गुलदस्ता बना देता है तो उसमें समस्त फूलों की मिलीजुली खुशबू आती है, उसी प्रकार इस भारत देश में जैन, बौद्ध, हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि सभी जातियों की मिलीजुली सुगन्धी प्राप्त होती है।

पूज्य आर्यिका **श्री अभयमती माताजी** ने अपने उद्बोधन में कहा कि जिन्होंने इस युग की आदि में जीने की कला सिखाई और षट्क्रियाओं का उपदेश दिया वे आदिनाथ भगवान देश की, राष्ट्र की, कुल की रक्षा करें और पूज्य माताजी ने जो हमें मार्ग दिखाया है उसे हम पूरा करें और उनके आदर्शों का पालन करें।

विशिष्ट अतिथि के रूप में पधारे दि. जैन महासमिति के राष्ट्रीय अध्यक्ष **श्री प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल**, इन्दौर ने उपस्थित विशाल जनसमुदाय एवं विद्वतजनों को संबोधित करते हुए कहा कि देश की दि. जैन समाज के एक मात्र प्रतिनिधि संगठन के अध्यक्ष के नाते मैं सर्वप्रथम तो दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान एवं चौ. चरणसिंह वि.वि. को इस बात के लिए बधाई देता हूँ कि उन्होंने यह सामयिक एवं अत्यंत महत्वपूर्ण आयोजन करने का निश्चय किया। मैं विनयावनत् हूँ माता ज्ञानमती जी के प्रति, जिन्होंने इस सामायिक एवं श्रेष्ठ आयोजन हेतु सम्यक् प्रेरणा दी। आज देश के बुद्धिजीवी वर्ग में इस बात की चर्चा है, कि जैन धर्मावलंबी अल्पसंख्यक की माँग क्यों उठा रहे है? मैं यहाँ स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि जैन धर्मावलंबी किसी आर्थिक लाभ प्राप्त करने, नौकरियों में आरक्षण पाने, बैंकों से अधिक ऋण प्राप्त करने अथवा छात्रवृत्तियाँ लेने हेतु आरक्षण नहीं चाहते। हम तो चाहते हैं कि हमारी संस्कृति, हमारे तीर्थ, हमारी मूर्तियाँ, हमारे प्राचीन ग्रंथ, पांडुलिपियाँ, हमारी भाषा, हमारी परंपराऐं और हमारे गुरूओं की निर्बाध चर्या सुनिश्चित हो। अपनी धार्मिक, शैक्षणिक संस्थाओं को हम बिना शासकीय हस्तक्षेप के स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता के साथ चला सकें। हमारे धर्मगुरु, अहिंसा, अनेकांत और अपरिग्रह का संदेश देने हेतु निर्बाध रूप से देश के प्रत्येक क्षेत्र में आ-जा सकें। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु हम अल्पसंख्यक की माँग करते है। यहीं मैं यह कहना प्रासंगिक समझता हूँ कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय, देश के प्रसिद्ध दार्शनिकों और इतिहासकारों ने भी जैन धर्म को एक स्वतंत्र तथा पूर्ण धर्म स्वीकार किया है एवं 1991 की जनगणना के आधार पर जैन धर्मावलंबियों की संख्या 50 लाख से भी कम है। फिर भी जैनों को धार्मिक अल्पसंख्यक न मानना कहाँ तक न्यायोचित है? श्री कासलीवाल जी ने माननीय कुलपतियों से आग्रह किया कि वे अपने अधिकारों एवं व्यक्तिगत प्रभाव का उपयोग करते हुए देश के विभिन्न अंचलों में प्रचलित पाठ्य पुस्तकों में जैन धर्म के बारे में अनर्गल बातें और तथ्यात्मक विसंगतियों को दूर कराने का कष्ट करें। आपने जैन समाज की ओर से उन्हें इस बात के लिए अग्रिम धन्यवाद दिया।

सांसद श्री धनंजयकुमार जैन ने अपने वक्तव्य में कहा कि मैं दक्षिण भारत का होने के बावजूद भी हस्तिनापुर 2-3 बार आ चुका हूँ और राजेश पायलट उत्तर भारत के होने के बाद भी पहली बार आये हैं, यह आश्चर्य है। शोधपीठ का भवन शीघ्र पूर्ण हो, उसका लाभ शोधार्थियों को मिले, यही भावना है। अल्पसंख्यक के बारे में मैं कहता हूँ कि जैनों को अल्पसंख्यक का दर्जा था और पुन: भी ऐसा ही होना चाहिये, मैं प्रयास अवश्य करूंगा।

मुख्य अतिथि के रूप में **सांसद श्री राजेश पायलट** ने कहा कि आज देश अजीब स्थिति से गुजर रहा है। यहाँ पर राजनैतिक चरित्र कमजोर होता जा रहा है इसीलिए राजनितिज्ञ आज जनता के आदर्श नहीं रह गए। फलत: हमें राजनैतिक लोगों से ज्यादा सामाजिक लोगों का सम्मान करना चाहिए। मेरी दृढ़ श्रद्धा है कि संतों के आशीर्वाद से ही देश की स्थिति सुदृढ़ हो सकती है। श्री पायलट एवं श्री धनंजय कुमार ने भगवान ऋषभदेव के चित्र के सम्मुख दीप प्रज्जवलित कर सम्मेलन का शुभारंभ किया।

पूज्यनीय माताजी द्वारा रचित षट्खण्डागम् की सिद्धांत-चिंतामणि संस्कृत टीका एवं आर्यिका

श्री चंदनामती द्वारा की गयी हिन्दी टीका सहित सत्प्ररूपणा नामक प्रथम खण्ड का विमोचन किया गया एवं इसकी प्रतियाँ समागत समस्त कुलपतियों को प्रदान की गयी।

समारोह में श्री माणिकचन्द जैन पाटनी, राष्ट्रीय महामंत्री - महासमिति, श्री नेमीचंद जैन, विधायक - शुजालपुर, श्री निर्मलचंद जैन, सदस्य - वित्त आयोग, श्री अयूब अहमद अंसारी, मेयर - मेरठ आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

पूज्य ज्ञानमती माताजी ने अपने आशीर्वचन में कहा कि **'जैन धर्म किसी व्यक्ति या जाति से जुड़ा नहीं है यह इंद्रियों पर विजय प्राप्त करने वालों का धर्म है और परस्पर मैत्री करने की शिक्षा देता है। इसके तीर्थंकरों के समवशरण में पारंपरिक शत्रुता रखने वाले जीव भी बैरभाव भूलकर पास आ जाते है और आज यहाँ भारतीय संस्कृति का गौरव रखने वाले राजनेता और कुलपतिगण उपस्थित हैं। मुझे विश्वास है कि यहाँ उपस्थित सभी जन पारस्परिक चर्चा के माध्यम से अज्ञान के आवरण को दूर करेंगे तथा अनादि काल से चले आ रहे प्राकृतिक जैन धर्म की शिक्षाओं और इसके सांस्कृतिक अवदान को भली प्रकार रेखांकित करेंगे।'** पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ने भगवान ऋषभदेव एवं जैन धर्म की प्राचीनता के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक प्रचार - प्रसार हेतु **'अन्तर्राष्ट्रीय भगवान ऋषभदेव निर्वाण महामहोत्सव समिति'** के गठन की घोषणा कर उसके अध्यक्ष पद पर **श्री प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल**, इन्दौर को मनोनीत किया।

उपस्थित राजनीतिज्ञों को संबोधित करते हुए आपने कहा कि - **'यह ठीक है कि धर्म में राजनीति नहीं होनी चाहिए किन्तु धर्म के बिना राजनीति बेमानी है।'**

पूज्य माताजी की 65वीं जन्म जयन्ती को मनाने के लिये जन्मभूमि टिकैतनगर से पधारे 'भरतसेना' के सदस्यों ने एक सुन्दर समवसरण तैयार किया जिसमें सजे 65 दीपों का प्रज्वलन श्री प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल, इन्दौर ने किया।

दिनांक 4.1098, अपरान्ह 4.30 – 6.00, द्वितीय सत्र

अध्यक्षता – प्रो. एस. रिन्पोछे, निदेशक - तिब्बती उच्च अध्ययन संस्थान, वाराणसी

मंगलाचरण – प्रो. भागचंद 'भास्कर', अध्यक्ष - पाली प्राकृत विभाग, नागपुर वि.वि, नागपुर

संचालन – प्रो. आर.आर. नांदगांवकर, पूर्वकुलपति - विक्रम वि.वि., उज्जैन

वक्ता – प्रो. अलाउद्दीन अहमद, कुलपति - जामिया हमदर्द वि.वि., दिल्ली,
'भगवान ऋषभदेव और पर्यावरण'।
डा. शोभिता जैन, निदेशक - इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त वि.वि., दिल्ली,
'Jainism & Contemporary Environment'.

प्रो. अलाउद्दीन अहमद ने वेद और उपनिषदों के विवरण प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध किया कि भगवान ऋषभदेव ने ही जैन धर्म चलाया था। उनके द्वारा मानव कल्याण के लिये बताये गये उपदेश आज भी सामाजिक विघटन, शोषण, साम्प्रदायिक विद्वेष, आतंकवाद के बढ़ते प्रभाव को रोकने में उतने ही प्रासंगिक है जितने पुरातन काल में थे। **डा. शोभिता जैन** ने कहा कि जैन जीवन पद्धति पर्यावरण के संरक्षण तथा आज की समकालीन समस्याओं के समाधान में नितांत उपयोगी एवं अनुकूल है। उनकी शिक्षाओं एवं सिद्धान्तों के बल पर आज भी जैन साधु बिना किसी दवा के ठीक हो जाते हैं, यह योग एवं साधना का ही प्रतिफल है। आपने आगे कहा कि आचार्य जिनसेन ने आदिपुराण में असि, मसि, कृषि आदि षट्क्रियाओं का वर्णन किया है। ऋषभदेव के पुत्र भरत ने मानव के आचार - विचार में उसे विभक्त करने हेतु चार वर्णों की स्थापना की थी और त्रस, स्थावर आदि की हिंसा न करने वालों को ब्राह्मण बनाया था, जैन लोग वनस्पति में प्राण मानते हैं, पांचों स्थावर अपने - अपने जीवन स्तर में जीव हैं, उनकी हिंसा नहीं करना, यही तो पर्यावरण है जो कि हमें भगवान ऋषभदेव ने प्रदान किया है, इत्यादि।

प्रो. एस. रिन्पोछे ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में समय के महत्व को प्रतिपादित करते हुए यह आशा व्यक्त की कि सम्मेलन में समागत बन्धु समय का सदुपयोग करते हुए सम्मेलन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सार्थक प्रयास करेंगे। इस सत्र में **प्रो. एस.के. मिश्रा,** कुलपति - महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी की उपस्थिति विशेष उल्लेखनीय रही। उनका आलेख **जैन धर्म एवं शिक्षा** प्रोसिडिंग्स में अन्य अनेक आलेखों के साथ प्रकाशित किया जा रहा है।

डॉ. अनुपम जैन ने अध्यक्ष प्रो. रिपोन्छे, संचालक प्रो. नांदगांवकर सहित सभी वक्ताओं के प्रति आभार ज्ञापित किया।

दिनांक 4.10.98, रात्रि 7.30 - 9.00, तृतीय सत्र

अध्यक्षता	-	प्रो. विद्यावती, कुलपति - काकतिया वि.वि., वारंगल (आंध्र प्रदेश)
वि. अतिथि	-	प्रो. पन्नालाल पापडीवाल, अध्यक्ष - महाराष्ट्र प्रान्तीय तीर्थ क्षेत्र कमेटी, पैठण (महा.)
मंगलाचरण	-	डॉ. शेखरचन्द्र जैन, सम्पादक - तीर्थंकर वाणी, अहमदाबाद
संचालन	-	प्रो. शुभचन्द्रा, जैन विद्या विभाग, मैसूर वि.वि, मैसूर
वक्ता	-	डा. अनुपम जैन, गणित विभाग - होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर, **'प्रास्ताविक वक्तव्य'**
		प्रो. आद्या प्रसाद मिश्र, कुलपति - महर्षि महेश योगी वि.वि., जबलपुर, **'अयोध्या नगरी में अवतरित भगवान ऋषभदेव'**
		प्रो. एस.एन. पी. सिन्हा, पूर्वकुलपति - पटना वि.वि., पटना, **'प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव - एक ऐतिहासिक महापुरुष'**

डा. अनुपम जैन ने अपने प्रस्ताविक वक्तव्य में दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर की अकादमिक उपलब्धियों की चर्चा करते हुए बताया कि पाठ्य पुस्तकों में निहित जैन धर्म विषयक भ्रांतियों के निरसन, वर्तमान में कार्यरत जैन शोधपीठों के सम्मुख उपस्थित समस्याओं के निराकरण, नवीन जैन अध्ययन केन्द्रों की स्थापना, तथा भगवान ऋषभदेव की शिक्षाओं के व्यापक प्रचार आदि महत्वपूर्ण विषयों पर व्यापक विचार - विमर्श एवं समस्याओं के व्यावहारिक समाधान खोजने के लिये यह सम्मेलन आयोजित किया गया है। इस सम्मेलन के माध्यम से समागत कुलपतियों के व्यापक शैक्षणिक तथा प्रशासनिक अनुभव के आधार पर जैन विद्या के अध्येताओं एवं जैन विद्वानों के सम्मुख आने वाली व्यावहारिक समस्याओं के समाधान खोजे जा सकते हैं।

प्रो. आद्या प्रसाद मिश्र ने कहा कि भगवान ऋषभदेव ने समस्त विद्याओं एवं कलाओं का प्रारंभ किया। आज मानव उसी के आधार पर विभिन्न माध्यमों से जीवन व्यतीत कर रहा है। उन्होंने कहा कि ऋषभदेव का जन्म करोड़ों वर्ष पूर्व हुआ था एवं उन्होंने कर्मों पर विजय प्राप्त कर जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर होने का सौभाग्य प्राप्त किया। **डा. एस.एन.पी. सिन्हा** ने कहा कि भगवान ऋषभदेव का श्रीमद् भागवत आदि अनेक ग्रंथों में वर्णन आता है। इसलिये भगवान ऋषभदेव एक ऐतिहासिक महापुरुष हुए हैं। आपने कहा कि जैन तीर्थंकरों ने अहिंसा शाकाहार का उपदेश देकर लोगों को सदाचार की ओर प्रेरित किया है। जिस प्रकार से संसार में आकाश से बड़ी कोई वस्तु नहीं है उसी प्रकार अहिंसा सिद्धान्त से बढ़कर कोई धर्म नहीं है जिसे जैनधर्म ने बड़ी प्रधानता से प्रतिपादित किया है। इसीलिये इस धर्म में वैर को स्थान न देकर क्षमा को धारण करने का उपदेश दिया गया है। **खम्मामि सव्व जीवाणं सव्वे जीवा खम्मतु मे, मित्ती में सव्व भूदेसु वैरं मज्झं ण केणवि ...** का सन्देश इस धर्म में है।

सत्र के विशिष्ट अतिथि **डॉ. पन्नालाल पापड़ीवाल** ने अपने उद्बोधन में कहा कि आज तक जो कार्य अन्य साधु नहीं कर सके वह पू. माताजी ने करके दिखाया है। जैन समाज में

उत्पन्न होने के नाते पूज्य माताजी जैसी साध्वी को अपने बीच पाकर मैं अधिक गौरव का अनुभव करता हूँ।

सत्र की अध्यक्षा **प्रो. विद्यावती जी** ने कहा कि नारी शिक्षा के क्षेत्र में यदि भगवान ऋषभदेव की देशना का हमने लाभ उठाया होता तो आज हमारे देश में शत-प्रतिशत शिक्षा होती, कोई निरक्षर न होता। मैंने अपने जीवनकाल में 200 शोध पत्र लिखे एवं मैं इसके लिये स्वयं को अत्यन्त गौरवांवित महसूस करती थी किन्तु आज यह जानकर कि पूज्य माताजी ने 200 ग्रंथों को लिखा है मैं आश्चर्य चकित हूँ और उनके आगे अपने को शून्य मानती हूँ। भगवान ऋषभदेव ने प्रेम करने के लिये कहा किन्तु प्रेम करने के लिये यह जिन्दगी छोटी पड़ जाती है फिर भी घृणा में हम अपना जीवन क्यों बर्बाद कर रहे है? यह विचारणीय है। विभिन्न वक्ताओं द्वारा विद्वानों की उपेक्षा के कारण जैन धर्म के संस्थापक के रूप में भगवान महावीर को बताये जाने का उल्लेख करने पर डा. शुभचन्द्रा ने कहा कि 'मुझे मूर्खों की मूर्खता से भय नहीं है मुझे भय है विद्वानों की निष्क्रियता से।' उनकी इस सटीक टिप्पणी से हाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा।

डॉ. अनुपम जैन ने सभी का आभार माना।

दिनांक 5.10.98, प्रात: 8.00 - 11.00, चतुर्थ सत्र

अध्यक्षता	-	प्रो. सुरेश प्रसाद सिंह, कुलपति - वीर कुँवरसिंह वि.वि., आरा (बिहार)
संचालन	-	प्रो. पी.एन. मिश्र, निदेशक - आई.एम.एस., देवी अहिल्या वि.वि., इन्दौर
मंगलाचरण	-	पं. लालचन्द जैन 'राकेश', गंजबासोदा
वक्ता	-	प्रो. सी. अंजनामूर्ति, कुलपति - कर्नाटक खुला वि.वि, मैसूर, **'Social Order as Profounded by Bhagavāna Ṛṣabhadeva'.**
		प्रो. इन्द्राणी चक्रवर्ती, कुलपति - इंदिरा कला - संगीत वि.वि., खैरागढ़ (म.प्र.), **'मानव जीवन में संगीत का योगदान एवं महत्व'**
		प्रो. उषाकर झा, पूर्वप्रतिकुलपति - एल.एन. मिथिला वि.वि., दरभंगा, **Bhagavāna Ṛṣabhadeva's Social & Political Thinking.**

प्रो. सी. अंजनामूर्ति ने कहा कि भ. ऋषभदेव ने कर्म के आधार पर जो व्यवस्था कायम की वह समतावादी थी तथा प्रत्येक व्यक्ति को प्रगति का समान अवसर प्रदान करती थी आज भी उनकी शिक्षायें प्रसांगिक हैं।

डा. इन्द्राणी चक्रवर्ती ने कहा कि भ. ऋषभदेव ने वर्तमान में प्रचलित विभिन्न विद्याओं की सर्वप्रथम शिक्षा दी एवं इस प्रकार वह इस युग के प्रथम शिक्षक के रूप में मान्य है। भ. ऋषभदेव द्वारा प्रदत्त शिक्षाओं में संगीत भी सम्मिलित है और यही कारण है कि जैन परम्परा में संगीत का विषय अत्यन्त व्यापक रूप में पाया जाता है।

प्रो. उषाकर झा ने भ. ऋषभदेव के राजनैतिक एवं सामाजिक चिन्तन पर विस्तार से प्रकाश डाला। आपने कहा कि हम अभी तक भगवान महावीर के जीवन से परिचित थे, किन्तु ऋषभदेव के बारे में नहीं जानते थे। यह पूज्य माताजी का उपकार है कि उन्होंने इस ओर हम लोगों का ध्यान आकर्षित किया है। **प्रो. सुरेश प्रसाद सिंह** ने अपने अध्यक्षीय संबोधन में भ. ऋषभदेव की शिक्षाओं पर विस्तार ने प्रकाश डालते हुए वर्तमान समय में उनकी प्रासंगिकता की चर्चा की। पू. क्षु. श्री मोतीसागरजी महाराज ने **तीर्थंकर ऋषभदेव राष्ट्रीय विद्वत् महासंघ** की स्थापना की घोषणा की। पूज्य माताजी ने अपने उद्बोधन में कहा कि इन्द्र ने जब भगवान के जन्मकल्याणक में तांडव नृत्य किया था तब वह संगीत कला का उदाहरण था। आदिपुराण में उस तांडव नृत्य का सुन्दर वर्णन है। भगवान ने युगादि में सबसे पहले कुरुजांगल देश का राजा

सोमप्रभ को बनाया, भगवान ने पुत्र भरत को नृत्य - संगीत विद्या सिखाई, पुन: सभी पुत्रों को अनेक कलाएँ सिखाई। भरत के पुत्र अर्ककीर्ति से सूर्यवंश चला है और उस वंश में अपने पुत्रों को राज्य देकर दीक्षा लेने की परम्परा रही है।

जबसे राजनीति में धर्म का पुट, कुलगुरुओं का मार्गदर्शन हट गया है तभी से राजनीति भ्रष्ट हो गई है। विद्वानों एवं कुलगुरुओं का दिशादर्शन आज की राजनीति में प्राप्त हो जावे तो निश्चित ही उसमें स्थिरता आयेगी।

इसी पवित्रधरा से भगवन्तों ने पहले अपने सुदर्शन चक्र से शत्रुओं को जीता, पुन: ध्यान चक्र से कर्मशत्रुओं को जीतकर कैवल्य प्राप्त किया, अत: यहाँ होने वाला प्रत्येक आयोजन निर्विघ्न सम्पन्न हो जाये, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

सम्मेलन में आगत समस्त कुलपतियों को प्रेरणा देते हुए पूज्य माताजी ने आगे कहा कि सभी विश्वविद्यालयों में वर्ष में एक दिन **'ऋषभदेव समारोह'** के नाम से एक संगोष्ठी आयोजित की जाये और संस्थान द्वारा प्रकाशित समस्त जैन साहित्य विश्वविद्यालयों में हस्तिनापुर से पहुँचाया जाये। डॉ. अनुपम जैन, मंत्री ने सभी का आभार माना।

दिनांक 5.10.98, दोपहर 1.00 – 3.30, पंचम सत्र

अध्यक्षता – प्रो. एस.एन. हेगडे, कुलपति - मैसूर वि.वि., मैसूर

संचालन – डा. नलिन के. शास्त्री, कुलसचिव - मगध वि.वि., बोधगया

मंगलाचरण – डा. कमलेश कुमार जैन, प्राध्यापक - बनारस हिन्दू वि.वि., वाराणसी

वक्ता – प्रो. मुनियम्मा, कुलपति - गुलबर्गा वि.वि., गुलबर्गा
'Impact of Jainism on Hyderabad & Karnataka Region'.

प्रो. शरद मांड, पूर्वकुलपति - म.प्र. भोज मुक्त वि.वि., भोपाल
'प्रथम शिक्षाविद् – भगवान ऋषभदेव'

प्रो. आर.आर. नांदगांवकर, पूर्वकुलपति - विक्रम वि.वि., उज्जैन
'पर्यावरण विज्ञान के जनक – भगवान ऋषभदेव'

प्रो. बलबीरसिंह भसीन, प्रतिकुलपति - मगध वि.वि, बोधगया
'विभिन्न धर्मों में अहिंसा'

प्रो. मुनियम्मा ने अपने उद्बोधन में आन्ध्र एवं कर्नाटक क्षेत्र में फैले जैन संस्कृति के पुरावशेषों के आधार पर यह प्रतिपादित किया कि इन क्षेत्रों के जन - जीवन एवं संस्कृति पर जैन तीर्थंकरों एवं आचार्यों की शिक्षा का व्यापक प्रभाव है। उन्होंने तर्कपूर्ण ढंग से यह प्रतिपादित किया कि जैन धर्म अति प्राचीन है तथा इसके तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव हैं।

प्रो. शरद मांड ने भी प्रथम शिक्षाविद् के रूप में जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के योगदान की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की। उन्होंने इस भारत भूमि को ग्राम, नगर, खेट, कर्वट, मतम्ब, पत्तन, द्रोणमुख तथा संवाहन में विभाजित कर सुयोग्य, प्रशासनिक न्यायिक अधिकारों से युक्त राजा, मण्डलीक, किलेदार, नगर प्रमुख आदि के सुपुर्द किया। मानव पूर्ण संतुष्ट कभी नहीं रह सकता है। इस व्यवस्था से नियमों के विरुद्ध कार्य करने वालों के लिये **'हाँ'** (खबरदार, डाँट लगाना), **मा** (फिर न करना) तथा **धिक** (धिक्कार हो), बार - बार समझाने पर भी पुन: पुन: इस प्रकार के कार्य करते हो, इसलिये धिक्कार, बहिष्कार आदि की दण्ड संहिता भी लागू की थी। कालांतर में देह बन्धन, कारागृह, वध, देश निकाला आदि संहिताएँ उसमें जुड़ गई। आपने कहा कि अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक के रूप में भेद नहीं किया जाना चाहिये। नियम सबके लिये समान हो। भेद का निर्माण न करें। सबको समानता का अधिकार मिले। आपने पोखरण के परमाणु विस्फोट को शक्ति प्रदर्शन की संज्ञा प्रदान करते हुए कहा कि शक्तिमान ही अहिंसा

की बात कर सकता है। नर की सेवा ही नारायण की सेवा है एवं अहिंसा धर्म ही सबसे बड़ा धर्म है।

विक्रम वि.वि. उज्जैन के पूर्वकुलपति **प्रो. आर.आर. नांदगांवकर** ने भगवान ऋषभदेव एवं पर्यावरण संरक्षण विषय पर विचार व्यक्त करते हुए भगवान ऋषभदेव को विश्व का पहला पर्यावरणविद् बताया। उन्होंने कहा कि प्रकृति के अपरिमित दोहन तथा जीवन की आवश्यकताओं को अधिक बढ़ाना ही वर्तमान पर्यावरण असंतुलन का प्रमुख कारण है। यह हमारी विकृत मानसिकता है कि हम बाहर से आई वस्तु को महत्वपूर्ण मानते हैं एवं अपने पास स्थित वस्तु को महत्वहीन। उन्होंने कहा कि पर्यावरण शब्द को अमेरिका की देन मानकर सर आखों पर बिठाया गया जबकि पर्यावरण विज्ञान के जन्मदाता भारत के आदि सपूत प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ही हैं। जो कार्य उन्होंने किया है उसके लिए उनको ही मान्यता देनी चाहिये। पर्यावरण विज्ञान का जनक यदि कोई है तो वे भगवान ऋषभदेव ही हैं।

मगध वि.वि. बोधगया के प्रतिकुलपति **मेजर बलबीरसिंह भसीन** ने कहा कि जैन धर्म साधना का मार्ग है। सभी धार्मिक ग्रंथों के भाव एक है। उन्होंने कहा कि गुरुवाणी में भी भगवान ऋषभदेव के नाम का उल्लेख है। हजारों साल पहले जो बातें जैन ग्रंथों या वेदों में कही गयी हैं वे बातें सभी धर्मों के पुराने ग्रंथों में हैं। गुरुवाणी में भी अहिंसा की व्याख्या की गयी है। झूठ नहीं बोलना, दूसरे के हक को नहीं मारना, बल्कि उसकी रक्षा करना, मोहमाया व लोभ में नहीं पड़ना चाहिए। इन सब बातों का उल्लेख गुरुवाणी में है जो भगवान ऋषभदेव की वाणी से लिया गया है। उन्होंने कहा कि लोगों को कर्म से ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। गुरुवाणी कहती है कि जो मोहमाया से दूर है वही असली मानव है, यह सन्देश भगवान ऋषभदेव की वाणी से ही लिया गया है। शादी न करना ही ब्रह्मचर्य नहीं कहलाता। उन्होंने इस देश में फैले झगडों के पीछे सियासी व धर्म गुरूओं का हाथ बताया। मैसूर वि.वि. के कुलपति **प्रो. एस.एन. हेगडे** ने भगवान ऋषभदेव के बताये सिद्धांतों पर चलने का आह्वान किया उन्होंने कहा कि श्री ज्ञानमती माताजी के उपदेश पूरी मानवता के लिये है। माताजी के आग्रह पर श्री हेगडे ने अपना कुछ भाषण कन्नड़ में दिया। इसी सत्र में मूर्धन्य जैन विद्वान **पं. नाथूरामजी डोंगरीय,** इन्दौर द्वारा लिखित एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा प्रकाशित पुस्तक **'जैनधर्म - विश्वधर्म'** का प्रो. हेगड़े द्वारा विमोचन किया गया।

दिनांक 5.10.98, दोपहर 3.30 - 5.30, जन्म जयन्ती समारोह

अध्यक्षता - श्री कैलाशचन्द्र मिश्रा, पूर्व सचिव - मुख्यमंत्री, उत्तरप्रदेश

मुख्य अतिथि - श्री धनराज यादव, सिंचाई राज्यमंत्री - उत्तरप्रदेश

जन्म जयन्ती समारोह **त्याग दिवस** के रूप में समागत विद्वत्जनों, कुलपतियों एवं भक्तों के मध्य मनाया गया। पिच्छिका परिवर्तन आदि पारम्परिक आयोजनों के अतिरिक्त सभा को संबोधित करते हुए पूज्य **आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी** ने कहा कि जब हम भगवान ऋषभदेव को भूलने लगे तो **पू. ज्ञानमती माताजी** ने उन्हें याद दिलाने का बीड़ा उठाया। शिक्षण संस्थाओं में ऋषभदेव के नाम की गूंज होने की संभावना हो गयी है। आपने कार्यक्रम में उपस्थित सभी लोगों को ज्ञानमती माताजी के जन्म दिवस पर शाकाहारी रहने का संकल्प लेने का आह्वान किया। उन्होंने वहां उपस्थित कुलपतियों से अपेक्षा की कि वे अपने विश्वविद्यालयों में शोधार्थियों को प्रेरित करें कि वे भगवान ऋषभदेव और ज्ञानमती माताजी पर शोध करें। शोधपीठ से उन्हें सहयोग किया जायेगा। इस कार्य के लिये हमें कुलपतियों के सहयोग की आवश्यकता है। आपने प्रवचन में कहा कि जैसे इक्षुरस से मिश्रित आटा मधुर हो जाता है उसी प्रकार से पूज्य पुरुषों की चरण रज से स्पर्शित स्थल भी पूज्य हो जाते हैं। उन सभी स्थलों को तीर्थ संज्ञा प्राप्त है। ऐसे तीर्थ एवं पुरुषों का नमन करने से मनोवांछित कार्यों की सिद्ध होती है। मुख्य अतिथि श्री यादव ने अपने संबोधन

में भगवान ऋषभदेव से संबंधित पुस्तकों एवं पाठों को स्कूल शिक्षा के पाठ्यक्रम में सम्मिलित कराने का आश्वासन दिया। आपने कहा कि भगवान ऋषभदेव अयोध्या में जन्मे थे और उन्होंने यहां हस्तिनापुर में आकर अन्न ग्रहण किया था। यह उन्हीं का वैभव है कि हस्तिनापुर में ज्ञानमती माताजी के सान्निध्य में कुलपति सम्मेलन हो रहा है। उन्होंने कहा कि माताजी ने कुलपतियों का जो आह्वान किया है कि वे अपने विश्वविद्यालयों में वर्ष में एक दिन भगवान ऋषभदेव के नाम पर चर्चा करने के लिए गोष्ठी करें, यह अच्छा तरीका है जिससे भगवान ऋषभदेव का भरपूर प्रचार हो सकता है। उन्होंने कहा कि हस्तिनापुर में दुनिया का सबसे बड़ा अपराध हुआ था। यहां नारी का चीर हरण किया गया था लेकिन अब उक्त अपराध का प्रायश्चित हो चुका है। जिस तरह से अहिल्याबाई का उद्धार भगवान राम के चरणों से हुआ था उसी तरह यहां ज्ञानमती माताजी की कृपा से हस्तिनापुर नगरी का उद्धार होना शुरू हो गया है। जैन समाज के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के पुत्र भरत हुए हैं जिनके नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा है। उन्होंने कहा कि इस राष्ट्र की जड़ धर्म है समाज तना है और राजनीति पेड़ की शाखायें है जो कटती रहती हैं। इन शाखों के कटने से कोई फर्क नहीं पड़ता।

पूज्य **आर्यिका श्री अभयमती माताजी** ने पूज्य माताजी के जन्मदिन पर अपनी विनयांजलि अर्पित करते हुए कहा कि पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी ने अपने जीवन में जो कार्य किये हैं उनकी प्रशंसा शब्दों में नहीं की जा सकती। आपने कहा कि पूज्य माताजी के कृपा प्रसाद से हम सभी शिष्याएँ रत्नत्रय की साधना में लगी हैं। आपका इसी प्रकार से आशीर्वाद हम सभी को एवं समाज को मिलता रहे ऐसी भगवान से प्रार्थना है।

पू. ज्ञानमती माताजी ने अपने जन्म दिवस पर कहा कि आज उनका जन्म दिवस नहीं त्याग दिवस है क्योंकि उनका जन्म 1934 में टिकैतनगर बाराबंकी में हुआ था। लेकिन उन्होंने 1952 में सब कुछ त्याग करने का संकल्प किया था वह उनका जन्म दिवस है इसलिए उनका आज 47 वां त्याग दिवस है। उन्होंने कहा कि ऋषभदेव ने अपने उपदेश में अधीनस्थ राजाओं को राजनैतिक उपदेश देकर उनको ज्ञान प्राप्त कराया। इसी के साथ शिक्षा में भी उनका अमूल्य योगदान है। जैन शास्त्रों में शिक्षा के सभी प्रकारों का वर्णन है। उन्होंने कहा कि मैसूर में जैन धर्म पर शोध होते रहे हैं। विश्वविद्यालयों में जो पाठ्यक्रम की पुस्तकें है उनमें एक पाठ भगवान ऋषभदेव के विषय में अवश्य रखवाया जाये। उन्होंने कहा कि आज की राजनीति में धर्म को अलग रखने से उथल-पुथल है। धर्म को अलग करने से ही उसमें दोष उत्पन्न हो गए हैं अगर राजनीति के साथ धर्म का समावेश हो तो राजनीति के गिरते स्तर को रोका जा सकता है। इसी कारण राजनीति में धर्म गुरुओं का सान्निध्य होना चाहिए। **जन्म जयंती कार्यक्रम** के अवसर पर ही **तीर्थंकर ऋषभदेव राष्ट्रीय विद्वत् महासंघ** की स्थापना की घोषणा की गई। इस महासंघ के माध्यम से भगवान ऋषभदेव की शिक्षाओं का व्यापक प्रचार-प्रसार किया जायेगा। संस्थापक अध्यक्ष एवं महामंत्री के रूप में डा. प्रेमसुमन जैन, उदयपुर तथा डा. अनुपम जैन, इन्दौर का मनोनयन किया गया। डा. शेखरचन्द्र जैन, अहमदाबाद कार्याध्यक्ष तथा कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन, हस्तिनापुर एवं डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर', नागपुर को परामर्शदाता मनोनीत किया गया। भोजनोपरांत रात्रि में विनयांजलि सभा का आयोजन किया गया जिसका संचालन डा. शेखरचन्द्र जैन अहमदाबाद ने किया। रात्रि 7.30 - 10.30 तक चली इस सभा में 40 विद्वान वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किये। जन्म जयन्ती के अवसर पर भक्तों द्वारा अनेक प्रकार के उपहार भी वितरित किये गये।

6.10.98, प्रातः 8.00 – 11.30, षष्ठम एवं समापन सत्र

अध्यक्षता – कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन, अध्यक्ष - दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर

मुख्य अतिथि – प्रो. एम. एल. रंगा, कुलपति - कुरुक्षेत्र वि.वि., कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

विशिष्ट अतिथि – प्रो. पी.एन. मिश्र, निदेशक - देवी अहिल्या वि.वि., इन्दौर
प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल, संकायाध्यक्ष - चौधरी चरणसिंह वि.वि., मेरठ

संचालन – डॉ. अनुपम जैन, होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर

मंगलाचरण – ब्रह्मचारिणी बहनें, संघस्थ - गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी

वक्ता – **पूज्य आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी, पूज्य क्षु. श्री मोतीसागरजी, पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी**
प्रो. ए.के. मैत्रा, निदेशक I.I.P.A. (दिल्ली), प्रो. आर.आर. नांदगांवकर (उज्जैन), प्रो. भागचन्द्र जैन 'भास्कर' (नागपुर), प्रो. धर्मचन्द जैन (कुरुक्षेत्र), प्रो. शेखरचन्द जैन (अहमदाबाद), प्रो. शुभचन्द्रा (मैसूर), प्रो. टीकमचन्द जैन (दिल्ली), डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी' (वाराणसी), श्री संजीव सराफ (सागर)

सम्मेलन के तीसरे एवं अंतिम दिन समापन सत्र में यह तथ्य उभरकर आया है कि **'भगवान ऋषभदेव वास्तव में भारतीय संस्कृति के समन्वयकारी सूत्र है जो समस्त मानव जाति के लिये आदर्श है। उन्होंने ही सर्वप्रथम लिपि एवं अंक विद्या चलाई एवं नारी शिक्षा का सूत्रपात कराया। वे जैन धर्म के प्रवर्तक, प्रथम शिक्षक एवं पर्यावरण संरक्षण के प्रथम उपदेष्टा है।'**

पीठाधीश क्षु. श्री मोतीसागरजी ने कहा कि जैनधर्म के विषय में प्रायः यह भ्रम रहता है कि यह हिन्दू धर्म की एक शाखा है, इसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है तथा षट्दर्शनों के प्रतिपादन में जैन धर्म को नास्तिक धर्म के रूप में माना जाता है। जबकि यह दोनों बातें नितांत भ्रांति फैलाने वाली हैं क्योंकि इसमें एक प्रतिशत भी सत्यता नहीं है। जहाँ तक मेरा अनुमान है कि जैनधर्म के गूढ़ रहस्यों तक न पहुँच पाने के कारण ही उसका वास्तविक प्रतिपादन नहीं हो पाया। इसीलिये शिक्षा जगत में मिथ्या धारणाएँ व्याप्त हो गई हैं।

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी ने कहा कि लोगों के कथनानुसार 1/2 प्रतिशत जैन की बात से जहाँ जैन अल्पसंख्यक सिद्ध होते हैं, किन्तु जैनधर्म की विस्तृत व्याख्या के अनुसार तो यह बहुसंख्यक प्रसिद्ध हो जाता है क्योंकि जब पशु - पक्षी तक को भी उसे धारण करने की स्वतंत्रता दी गई है तो वह हमारा व्यक्तिगत धर्म कहाँ रह जाता है। प्राकृतिक धर्म को मात्र 2500 वर्ष पूर्व का मानना एक विडम्बना है। यदि आपकी उम्र काफी कम करके कोई कहे तो आपको बुरा नहीं लगेगा। वैसे ही अनादि निधन धर्म को 2500 वर्ष पुराना कह देना नितान्त अज्ञानता का प्रतीक है।

पूज्य आर्यिकारत्न श्री अभयमती माताजी ने सभी को अपना मंगल आशीर्वाद दिया।

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन ने आयोजन समिति के अध्यक्ष के रूप में आयोजन से जुड़े सभी बन्धुओं के प्रति आभार ज्ञापित करते हुए कहा कि पूज्य माताजी ने इस ऐतिहासिक नगरी हस्तिनापुर में आकर अद्वितीय तीर्थ जम्बूद्वीप का निर्माण कराया, यह समाज के लिये अनुकरणीय है। पाठ्य पुस्तकों में जो त्रुटियाँ वर्तमान में दिखाई दे रही हैं वह केवल भूलवश है, उनके पीछे कोई दुर्भाव नहीं है। हमनें उन त्रुटियों की ओर ध्यान दिलाया है तथा शीघ्र ही उनका परिष्कार हो जायेगा। आपने सभी शिक्षाविदों से अपेक्षा की कि -

1. भगवान ऋषभदेव के जन्मदिन अथवा निर्वाण दिवस में से सुविधानुसार कोई भी एक दिन निश्चित करके उस दिन विश्वविद्यालयों में ऋषभदेव समारोह आयोजित करें।
2. विश्वविद्यालय जैन साहित्य प्राप्ति के लिये दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर (मेरठ) को अधिकृत कर दें तो यहीं से हम उन्हें सभी साहित्य उपलब्ध करायेंगे।

पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ने अपने आशीर्वादात्मक संबोधन में कहा कि भगवान ऋषभदेव जैन, हिन्दू आदि किसी भी जाति अथवा सम्प्रदाय के भगवान नहीं हैं वह तो जन - जन के परमपिता आदि ब्रह्मा है। उन्होंने युग के आदि में समस्त जनता को असि, मसि, कृषि आदि षट् क्रियायें सिखाई। समाज व्यवस्था, राज्य व्यवस्था तथा मोक्ष व्यवस्था का संचालन किया। जितेन्द्रियता का संदेश देने वाले जैन धर्म को उन्होंने पूरे आर्यावर्त में प्रकाशित किया पुनः महावीर स्वामी तक 23 तीर्थंकरों ने उसी जैन धर्म का प्रवर्तन किया किन्तु आज पाठ्यक्रमों के माध्यम से यह भ्रान्त विचार प्रचारित किया जा रहा है कि जैन धर्म की स्थापना

भगवान महावीर स्वामी ने की। पाठ्यपुस्तकों में संशोधन करके वास्तविक तथ्य प्रदर्शित करना चाहिये। आपने समस्त कुलपतियों को यह प्रेरणा दी कि वर्ष में एक बार विश्वविद्यालयों में **भगवान ऋषभदेव समारोह** नामक कार्यक्रम आयोजित किया जाए जिसमें जैन धर्म तथा ऋषभदेव से संबंधित व्याख्यानमाला, निबंध प्रतियोगिता, संगोष्ठी आदि का आयोजन हो। पूज्य माता जी की प्रेरणा से मंचासीन कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के कुलपति **प्रो. एम.एल. रंगा** ने भगवान ऋषभदेव के निर्वाण दिवस 16 जनवरी 1999 को कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय द्वारा संगोष्ठी के आयोजन की घोषणा की तथा इसका संयोजक डॉ. डी. सी. जैन (कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय) को मनोनीत किया। इसी क्रम में प्रो. बलवीर सिंह भसीन ने मगध विश्वविद्यालय - बोधगया में, प्रो. पी.एन. मिश्र ने देवी अहिल्या विश्वविद्यालय - इन्दौर में डा. प्रेमसुमन जैन ने सुखाडिया विश्वविद्यालय उदयपुर में, डा. भागचंद जैन 'भास्कर' ने नागपुर विश्वविद्यालय - नागपुर में, डा. फुलचंद्र जैन 'प्रेमी' ने बनारस में तथा प्रो. सुरेशप्रसाद सिंह ने वीर कुँवरसिंह विश्वविद्यालय आरा में भगवान ऋषभदेव समारोह आयोजित करने की घोषणा की। प्रो. बलबीर सिंह भसीन ने यह घोषित किया कि एक सप्ताह में ही वह मानव संसाधन मंत्री से सम्पर्क कर पाठ्यपुस्तकों में निहित विसंगतियों को दूर करायेगें। **पूज्य माताजी ने यह प्रेरणा दी कि निकट भविष्य में अंतर्राष्ट्रीय स्तर कर कुलपति सम्मेलन आयोजित किया जाए जिससे सम्पूर्ण विश्व उनकी शिक्षाओं से सुपरिचित हो सके।**

मुख्य अतिथि के रूप में अपने संबोधन में कुलपति **प्रो. एम.एल. रंगा** ने कहा कि हमने तीर्थंकरों के आदर्शों पर चलना बन्द कर दिया है और इसी कारण हम पथ भ्रष्ट हो गये। उन्होंने उत्तर भारत के विश्वविद्यालयों में जैन तीर्थंकरों की शिक्षाओं एवं जैन साहित्य पर व्यापक शोध की आवश्यकता प्रतिपादित की एवं कहा कि कुरुक्षेत्र द्वारा होने वाली आगामी संगोष्ठी से इस कार्य को गति प्रदान की जायेगी। **प्रो. रंगा** ने आज के सत्र में **कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर की प्रतिष्ठित शोध त्रैमासिकी अर्हत् वचन के 40वें अंक (वर्ष - 10, अंक - 4, अक्टूबर 98)** का विमोचन किया। यह अंक कुलपति सम्मेलन के अवसर पर विशेष रूप से प्रकाशित किया गया। इसका विमोचन संपादक **डा. अनुपम जैन, प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल** एवं **श्री जयसेन जैन** द्वारा प्रो. रंगा के हाथों कराया गया एवं समागत समस्त विद्वानों को इसकी प्रतियाँ सादर नि:शुल्क उपलब्ध करायी गई।

आज के इस सत्र में **प्रो. डी.पी. तिवारी** मेरठ, **मेजर बलबीर भसीन** - गया एवं **डा. नलिन के. शास्त्री** बोधगया की त्रिसदस्यीय समिति द्वारा तैयार किये गये जम्बूद्वीप घोषणा पत्र को सदन के सम्मुख डॉ. अनुपम जैन द्वारा प्रस्तुत किया गया। वाचन के बाद कतिपय संशोधनोपरांत यह घोषणा पत्र सर्वानुमति से सदन द्वारा स्वीकृत किया गया जिसका पाठ अग्रांकित है। आज के इस सत्र में संयोजक मंडल के सभी सदस्यों ने अपने विचार व्यक्त किये जिसके अंतर्गत **डा. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी'**, वाराणसी ने जम्बूद्वीप में महिला विश्वविद्यालय की स्थापना का सुझाव दिया। **डा. भागचन्द जैन 'भास्कर'**, नागपुर ने कहा कि सभी विश्वविद्यालयों में जैन विद्या विभागों की स्थापना होनी चाहिये। **प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल** ने मेरठ वि.वि. के प्रतिनिधि के रूप में बोलते हुए इस आयोजन के विश्वविद्यालय के साथ संस्थान के 20 वर्षीय सतत सहयोग की प्रक्रिया में नींव का पत्थर निरूपित किया एवं कहा कि वे जैन नहीं है किन्तु माता ज्ञानमती जी भी मात्र जैन नहीं अपितु सम्पूर्ण मानव जाति की है। आपने कहा कि विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम में भगवान ऋषभदेव के पाठ को जोड़ना इतना आसान नहीं है। इसके लिये गंभीरतापूर्वक निरन्तर प्रयास करना होगा उन्होंने विश्वास दिलाया कि वे विश्वविद्यालय से इस संस्थान की नवगठित शोधपीठ को अतिशीघ्र मान्यता दिला सकेगें और जिस विश्वास के साथ पूज्य माताजी ने उन्हें दायित्व सौंपा है उसे वह पूर्ण कर पायेगें।

डा. शेखरचन्द जैन, अहमदाबाद ने कहा कि संस्कृति के आदि पुरुष भगवान ऋषभदेव से संबंधित पाठ को यदि विश्वविद्यालयीन पाठ्यक्रम में रखा जायेगा तो समाज पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा तथा साधुओं के लिये समाज में एक नया संदेश जायेगा। **प्रो. पी. एन. मिश्र,** इन्दौर ने कहा कि कुलपतियों से हम कुछ अधिक ही अपेक्षायें कर रहे हैं। उनकी भी कुछ सीमायें होती है और कुछ परेशानियाँ। उनको लांघा नहीं जा सकता। हमें पाठ्यक्रमों में संशोधन की अपेक्षा शोधकर्त्ताओं एवं विद्वानों से करना चाहिये। वे ही पुस्तकें लिखते हैं और पाठ्य पुस्तक लेखकों हेतु आधारभूत सामग्री एकत्रित करते हैं। आपने कहा कि जैन धर्मावलम्बी संख्या में भले ही कम हों किन्तु अत्यन्त परिपक्व वैज्ञानिक, उत्कृष्ट, दार्शनिक परम्परा से संबंद्ध है। उनका सम्पन्न साहित्य ही उनकी अमूल्य संपत्ति है। उन्होंने सुविधाओं की प्राप्ति हेतु अल्पसंख्यक की मांग को अनुपयुक्त

बताया। प्रो. मिश्र की बात से सहमति व्यक्त करते हुए **डा. अनुपम जैन** ने बताया कि जैन धर्मावलम्बियों को नौकरी में आरक्षण, छात्रवृत्ति जैसी बातों के लिये अल्पसंख्यक की मांग न करनी चाहिये और न ही वे इस हेतु मांग कर रहे है। जैन समाज के तो सैकड़ों ट्रस्ट गुणात्मकता के आधार पर स्वयं छात्रवृत्तियाँ देते है। शोध संस्थान चलाते है। धर्मशालायें, पाठशालायें, औषधालय आदि जैन समाज द्वारा देश के कोने-कोने में चलाये जा रहे तथा वहां जाति, धर्म या सम्प्रदाय के आधार पर कोई भेद नहीं होता हम अल्पसंख्यक की मांग तो अपनी संस्कृति अपने धर्मायतनों की सुरक्षा के लिये अपनी शैक्षणिक संस्थाओं को बिना शासकीय हस्तक्षेप के स्वायत्ततापूर्वक संचालित करने के उद्देश्य से कर रहे है। बहुसंख्यक समाज के राजनैतिक एवं सामाजिक दबाव से मुक्त रहकर हम अपनी परम्पराओं और अपने धर्म गुरूओं की निर्बाध चर्या को सुनिश्चित कर सके यही अल्पसंख्यक स्वरूप मांगने के पीछे भाव है।

पाठ्य पुस्तकों में संशोधन हेतु पूज्य माताजी की प्रेरणा से प्रो. बलबीर सिंह भसीन की एक सदस्यीय समिति का गठन किया गया। समापन सत्र में गणिनी ज्ञानमती शोधपीठ के नव नियुक्त निदेशक **प्रो. आर.आर. नांदगांवकर**, आयोजन समिति के सचिव एवं युवा विद्वान **डा. अनुपम जैन** सहित समस्त कुलपतियों, पूर्वकुलपतियों एवं पधारें 111 पर्यवेक्षक विद्वानों का स्मृति चिन्ह, प्रशस्ति पत्र एवं साहित्य प्रदान कर सम्मान किया। सम्मान समारोह में लंदन म्यूजियम में सुरक्षित भगवान ऋषभदेव एवं भगवान महावीर की द्वितीर्थी मूर्ति एवं गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के लेमीनेटेड चित्र भी सभी को प्रदान किये गये।

अनेक कुलपतियों ने अपनी प्रतिक्रिया मौखिक एवं पत्रों के माध्यम से व्यक्त करते हुए सम्मेलन को अत्यन्त सफल, सुनियोजित एवं दूरगामी प्रभावों वाला निरूपित किया है। जम्बूद्वीप के सुरम्य परिसर तथा आयोजन समिति के पदाधिकारियों की आत्मीयता एवं आतिथ्य की सभी ने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

सम्मेलन की विस्तृत आख्या (Proceedings) शीघ्र प्रकाशित कर दी जायेगी।

गणिनी ज्ञानमती शोधपीठ का शुभारंभ

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर (मेरठ) अपनी स्थापना के समय से ही शोध और अनुसंधान की गतिविधियों में संलग्न रहा है। जैन आगमों में उपलब्ध विवेचनों के आधार पर विश्व प्रसिद्ध जम्बूद्वीप रचना के निर्माण एवं 170 से अधिक सिद्धांत, भूगोल, खगोल, व्याकरण, गणित, उपन्यास, कथा, नाटक, बालोपयोगी ग्रंथों एवं अन्य विविध विषयक ग्रंथों के प्रकाशन के साथ ही यह संस्थान विशाल विद्वत् शिक्षण प्रशिक्षण शिविरों, सेमीनारों, संगोष्ठियों, सम्मेलनों का आयोजन करता रहा। मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित होने वाले इन सम्मेलनों की अकादमिक जगत में भूरि-भूरि प्रशंसा रही। सम्प्रति शोध गतिविधियों को अधिक समन्वित स्वरूप प्रदान किये जाने हेतु दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के उदार आर्थिक सहयोग से **गणिनी ज्ञानमती शोधपीठ** की स्थापना का निश्चय किया गया जिसका शुभारंभ **पूज्य, गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी** के जन्मदिन के पुनीत अवसर पर दानवीर श्रेष्ठी **श्री महावीर प्रसाद जैन** संघपति द्वारा भगवान ऋषभदेव के चित्र के सम्मुख दीप प्रज्वलित कर किया गया। शोधपीठ के भव्य भवन के निर्माण हेतु 1,06,565=00 रुपये की राशि **श्री महावीर प्रसाद जैन, दिल्ली** द्वारा प्रदान की गई तथा अन्य अनेक दानवीरों ने भी 6565=00 रुपये की राशि घोषित की। शोधपीठ को **प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी** का मार्गदर्शन एवं **पीठाधीश क्षु. मोतीसागरजी** का निर्देशन उपलब्ध रहेगा।

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन द्वारा शोधपीठ के निदेशक के रूप में विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन के कुलपति प्रो. आर.आर. नांदगांवकर की घोषणा का विद्वत समुदाय ने उत्साहपूर्वक स्वागत किया। निदेशक मंडल में **प्रो. सुरेशचन्द अग्रवाल**, अध्यक्ष - विज्ञान संकाय, चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय मेरठ तथा **डा. अनुपम जैन**, संपादक अर्हत् वचन को मनोनीत किया गया। जैन विद्या के क्षेत्र में शोध करने वाले शोधार्थियों के आवेदन आमंत्रित है।

भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन

जम्बूद्वीप - हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र. - दिनांक 4 - 6 अक्टूबर 1998

जम्बूद्वीप घोषणा पत्र - 1998

प्रास्ताविक — जैनधर्म प्राकृतिक एवं अनादि निधन धर्म है, जिसका उद्देश्य आत्मा को परमात्मा के रूप में परिणित करना है। भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक चौबीस तीर्थंकरों ने इसका प्रचार प्रवर्तन किया है। भगवान ऋषभदेव वास्तव में भारतीय संस्कृति में समन्वयकारी सूत्र हैं, जो समस्त मानव जाति के लिये विशुद्ध आदर्श है। मूर्त और अमूर्त जगत के बीच, प्रवृत्ति और निवृत्ति के बीच तथा प्रभाव एवं अभाव के बीच सन्तुलन स्थापित करने की कला भगवान ऋषभदेव ने मानव जाति को सिखायी, जो उनका एक अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है। उनकी शिक्षाएँ मात्र किसी एक धर्म, समाज या राष्ट्र के लिए नहीं अपितु समस्त प्राणियों के लिए प्रासंगिक हैं। मानवीय कल्याण के लिए प्रदत्त उनके उपदेश सामाजिक विघटन, शोषण, साम्प्रदायिक विद्वेष आदि अनेक विसंगतियों को दूर करने के लिए एक अमोध अस्त्र है। उन्होंने अपनी पुत्रियों ब्राह्मी और सुन्दरी को सर्वप्रथम लिपि एवं अंक विद्या की शिक्षा प्रदान कर नारी शिक्षा का अथ किया था, जिसने मानवीय ज्ञान के विकास को एक नई दिशा प्रदान की।

परम पूज्य गणिनीप्रमुख, आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी का चिन्तन वैशिष्ट्य — पूज्य आर्यिका श्री के चिन्तन में इस तथ्य को एक लम्बी अवधि से रेखांकित किया गया कि भगवान ऋषभदेव के साथ भारतीय चिन्तन की सामयिक दृष्टि ने यथेष्ट न्याय नहीं किया है। उनकी चिन्ता इस विचार प्रवाह के साथ सर्वाधिक रही है, जिसने भगवान महावीर को जैनधर्म के प्रवर्तक के रूप में आख्यायित कर इतिहास के साथ खिलवाड़ किया है और किया है अन्याय जैन परम्परा के साथ। पूज्य मातुश्री की मंगल प्रेरणा से अनेकों अवसर पर विभिन्न माध्यमों से इस विसंगति की ओर ध्यान दिलाया गया है और वस्तुनिष्ठ सत्य की प्रतिष्ठापना के प्रयास किये गये हैं।

भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन — भारत में सम्प्रति 237 विश्वविद्यालय वर्तमान में हैं, जिनके अन्तर्गत लगभग दस हजार महाविद्यालय छात्र - छात्राओं को शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। विश्वविद्यालयों के तीनों प्रकार - केन्द्रीय, राज्य एवं मानित विश्वविद्यालय, मात्र लीक पर चल कर प्राध्यापन की सुविधा ही प्रदान नहीं करते, प्रत्युत नव - चिन्तन के नवोन्मेष के भी चैतन्य केन्द्र हैं, जहाँ से नव - ज्ञान की रश्मियाँ विस्तीर्ण होती हैं। विश्वविद्यालयों की इस सार्थकता का परिज्ञान करते हुए पूज्य मातुश्री ने दिशा - बोध दिया कि इन सर्जना केन्द्रों के शीर्षस्थ नेतृत्व के साथ एक जीवन्त संवाद स्थापित किया जाना अपरिहार्य है। पूज्याश्री का यह सुस्पष्ट अभिमत रहा है कि इतिहास के वस्तुनिष्ठ सत्यों की पुनर्स्थापना एवं उनका पुनर्लेखन, भगवान ऋषभदेव एवं उनकी परम्परा के तीर्थंकरों द्वारा मानवीय कल्याण हेतु दिये गये अहिंसा, जीव - दया, साम्प्रादायिक सद्भाव, विश्वशांति, शोषणमुक्त समाज की रचना, पर्यावरण एवं प्रकृति संरक्षण को सुनिश्चित करना आदि ऐसे मसले हैं, जिनका हल खोजने के महायज्ञ में भारतीय मेधा के शीर्षस्थ नेतृत्व की समिधा अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि वे इस दिशा में अध्ययन / अनुसंधान प्रारम्भ करने / विकसित करने में प्रेरक तथा मार्गदर्शक भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं।

कुलपति सम्मेलन - आयोजन — उपर्युक्त वैचारिक सन्दर्भ में दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध

संस्थान, हस्तिनापुर एवं चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ के संयुक्त तत्वावधान में 4 अक्टूबर से 6 अक्टूबर 1998 के मध्य यह कुलपति सम्मेलन आयोजित हुआ, जिसमें भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों के वर्तमान एवं पूर्व कुलपतियों तथा प्रतिकुलपतियों ने भाग लिया। कुलपतियों का यह सम्मेलन समवेत स्वर में, एक मत हो निम्नलिखित अनुशंसाएँ **'जम्बूद्वीप घोषणापत्र 1998'** के माध्यम से जारी करता है तथा आशा करता है कि इक्कीसवीं शताब्दी में हम नव - विचारों के उन्मेष के साथ पदार्पण करेंगे। यह सम्मेलन यह भी विश्वास करता है कि भारतीयता की वितति को समर्पित अनेक इतिहासज्ञ, दार्शनिक, पुरातत्वविद्, श्रमण परम्परा के वस्तुनिष्ठ सत्यों के उद्भासन में अपना योगदान देंगे -

1. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से अनुरोध है कि प्राकृत एवं भगवान ऋषभदेव की परम्परा के साहित्य को अपने अध्ययन सहाय्य कार्यक्रमों के अन्तर्गत बौद्ध अध्ययन, नेहरु अध्ययन, अम्बेडकर अध्ययन आदि के समान स्थान दें एवं इस विषय के समस्त अध्ययन कार्यक्रमों को गति दे।
2. केन्द्र सरकार एवं समस्त राज्य सरकारों से अनुरोध है कि संस्कृत एवं पालि के समान प्राकृत को संघ लोक सेवा आयोग एवं राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा संचालित की जाने वाली परीक्षाओं में एक विषय के रूप में मान्यता दी जाये।
3. राज्य सरकारों तथा सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ सेकन्डरी एज्यूकेशन से अनुरोध है कि हाई - स्कूल एवं इन्टरमीडिएट परिषदों में इण्टर स्तर तक प्राकृत को एक विषय के रूप में मान्यता प्रदान की जाये, साथ ही शिक्षकों के यथेष्ट पदों की स्वीकृति की जावे।
4. भारत के सभी कुलपतियों से आग्रह है कि डिग्री स्तर पर प्राकृत तथा भगवान ऋषभदेव की परम्परा के साहित्य के प्राध्यापन की समुचित व्यवस्था करायें एवं व्याख्याताओं के यथेष्ट पदों की स्वीकृति भी करायें ताकि प्राध्यापन कार्य सुचारू रूप से चल सके।
5. राज्यों की पाठ्यपुस्तक समितियों, राज्य शैक्षिक एवं अनुसंधान परिषद (S.C.E.R.T.) तथा राष्ट्रीय शैक्षणिक एवं अनुसंधान परिषद **(N.C.E.R.T.)** से अनुरोध है कि वे अपेक्षित पुनरीक्षण कार्यशालाओं का आयोजन कर अपने संस्थानों से प्रकाशित पुस्तकों में जैन धर्म विषयक तथ्यात्मक विसंगतियों को दूर करने को सुनिश्चित करें, ताकि प्रामाणिक तथ्य सम्प्रेषित किये जा सकें। (विस्तृत आख्या अलग से प्रस्तुत)
6. केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों से अनुरोध है कि भगवान ऋषभदेव समारोह के आयोजनों की शासकीय व्यवस्था को सुनिश्चित किया जाये।
7. सभी विश्वविद्यालयों के कुलपतियों से आग्रह है कि वर्ष में कम से कम एक दिन भगवान ऋषभदेव के सन्दर्भ में संगोष्ठियों / सेमिनारों / कार्यशालाओं / विशिष्ट भाषणों आदि के आयोजनों को सुनिश्चित किया जाये।
8. कुलपतियों की एक समिति गठित की जाये, जो उपर्युक्त अनुशंसाओं की कालबद्ध क्रियान्वित को सुनिश्चित करे।

जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर
6.10.98

सम्मेलन में उपस्थित समस्त कुलपतिगण
एवं
जैन विद्या के मनीषी शताधिक विद्वत्गण

समागत संत / कुलपति / विद्वत्जन

संत एवं व्रतीगण

1. परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी
2. पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी
3. पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
4. पूज्य पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागरजी
5. पूज्य क्षुल्लिका श्रद्धामती जी
6. पूज्य क्षुल्लिका शांतिमतीजी
7. पूज्य स्वस्ति श्री धवलकीर्ति भट्टारक स्वामी जी
8. कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमारजी जैन
9. ब्रह्मचारिणी कुमारी बीनाजी
10. ब्रह्मचारिणी कुमारी आस्था जी
11. ब्रह्मचारिणी कुमारी सारिका जी
12. ब्रह्मचारिणी कुमारी चन्द्रिका जी
13. ब्रह्मचारिणी कुमारी इन्दु जी
14. ब्रह्मचारिणी कुमारी अलका जी
15. ब्रह्मचारिणी कुमारी सुवर्णा जी
16. ब्रह्मचारिणी कुमारी प्रीति जी
17. ब्रह्मचारिणी कुमारी रश्मि जी
18. ब्रह्मचारिणी श्रीमती शशि जी

राजनेता

1. सांसद श्री राजेश पायलट, पूर्व मंत्री
2. सांसद श्री धनंजय कुमार, पूर्व मंत्री
3. श्री धनराज यादव, सिंचाई राज्यमंत्री - उ.प्र.
4. श्री नेमीचंद जी जैन, विधायक - म.प्र.
5. श्री अय्यूब अहमद अंसारी, मेयर - मेरठ

कुलपति / पूर्वकुलपति / कुलपति प्रतिनिधि

1. प्रो. आद्या प्रसाद मिश्र, कुलपति - महर्षि महेश योगी वैदिक वि.वि., जबलपुर (म.प्र.)
2. प्रो. अलाउद्दीन अहमद, कुलपति - जामिया हमदर्द वि.वि., नई दिल्ली
3. प्रो. ए.के. मैत्रा, निदेशक - स्कूल ऑफ प्लानिंग एण्ड आर्कीटेक्चर, नई दिल्ली
4. मेजर बलबीरसिंह भसीन, प्रतिकुलपति - मगध वि.वि., बोधगया (बिहार)
5. प्रो. सी. अंजनामूर्ति, कुलपति - कर्नाटक खुला वि.वि., मैसूर (कर्नाटक)
6. प्रो. डी.पी. तिवारी, कुलपति - चौधरी चरणसिंह वि.वि., मेरठ (उ.प्र.)
7. प्रो. इन्द्राणी चक्रवर्ती, उपकुलपति - इंदिरा कला संगीत वि.वि., खैरागढ़ (म.प्र.)
8. प्रो. एम.एल. रंगा, कुलपति - कुरूक्षेत्र वि.वि., कुरूक्षेत्र (हरियाणा)
9. प्रो. एम. मुनियम्मा, कुलपति - गुलबर्गा वि.वि., गुलबर्गा (कर्नाटक)
10. प्रो. आर. आर. नौंदगांवकर, पूर्व कुलपति - विक्रम वि.वि., उज्जैन
11. प्रो. एस. के. शर्मा, कुलपति - महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, हरिद्वार (उ.प्र.)
12. प्रो. एस. रिम्पोछे, निदेशक - केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, वाराणसी (उ.प्र.)
13. प्रो. शरद सी. भांड, पूर्व कुलपति - म.प्र. भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
14. डॉ. सुरेश प्रसाद सिंह, कुलपति - वीर कुँवरसिंह वि.वि., आरा (बिहार)
15. डा. एस.एन.पी. सिन्हा, पूर्व कुलपति - पटना वि.वि., पटना (बिहार)
16. प्रो. एस.एन. हेगडे, कुलपति - मैसूर वि.वि., मैसूर (कर्नाटक)
17. प्रो. उषाकर झा, पूर्व - प्रति कुलपति - एल.एन. मिथिला वि.वि., दरभंगा (बिहार)
18. प्रो. (श्रीमती) विद्यावती, कुलपति - काकतिया वि.वि., वारंगल (आंध्रप्रदेश)
19. डॉ. शोभिता जैन, निदेशक - इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त वि.वि., नई दिल्ली
20. प्रो. पी.एन. मिश्र, निदेशक - प्रबन्ध अध्ययन संस्थान, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

विद्वतजन

1. डा. अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर
2. श्री आदित्य जैन, लखनऊ
3. डा. अजित शुकदेव शर्मा, वीरभूमि
4. पं. अकलंक कुमार जैन, लखनऊ
5. प्रो. अक्षयकुमार जैन, इन्दौर
6. डा. अनुपम जैन, सम्पादक, इन्दौर
7. डा. (कु.) आराधना जैन 'स्वतंत्र', गंजबासौदा
8. कु. आराधना मेहता, इन्दौर
9. श्री अरविन्द कुमार जैन, इन्दौर
10. डा. अशोक कुमार जैन, लाडनूं
11. डा. अशोक कुमार जैन, ग्वालियर
12. प्रो. आशा सिंह, मेरठ

13. डा. बाबूलाल जैन 'अनुज', बम्डा सागर
14. पं. बाबूलाल जैन 'फागुल्ल', वाराणसी
15. प्रो. भागचन्द्र जैन 'भास्कर', नागपुर
16. इंजी. डी.सी. जैन, छतरपुर
17. प्रो. दिवाकर पाण्डे, मेरठ
18. डा. देवेन्द्र कुमार जैन, ग्वालियर
19. प्रो. धर्मचन्द्र जैन, कुरुक्षेत्र
20. पं. धर्मचन्द जैन मोदी, छतरपुर
21. वैद्य धर्मचन्द्र जैन, इन्दौर
22. डा. गणेश कावड़िया, इन्दौर
23. डा. गोकुल प्रसाद जैन, दिल्ली
24. डा. जैनमती जैन, आरा (बिहार)
25. पं. जयकुमार जैन साढूमल
26. पं. जयसेन जैन, सम्पादक, इन्दौर
27. पं. जयन्तकुमार जैन, सीकर
28. श्री जीवन प्रकाश जैन, इन्दौर
29. प्रो. के.के. जैन, दिल्ली
30. प्रो. के.के. जैन, बीना (म.प्र.)
31. डा. (श्रीमती) कल्पना जैन, भोपाल
32. प्रो. कल्पना बंडी, इन्दौर
33. डा. कमलेश कुमार जैन, वाराणसी
34. पं. कमलकुमार कमलांकुर, भोपाल
35. श्रीमती कांति जैन, ग्वालियर
36. डा. कस्तूरचंद जैन 'सुमन', श्री महावीरजी
37. डा. कस्तूरचंद कासलीवाल, जयपुर
38. डा. किरणकला जैन, कुरुक्षेत्र
39. पं. कोमलचंद जैन शास्त्री, बांसवाड़ा
40. डा. कुलभूषण लोखंडे, शोलापुर
41. डा. कुसुम अग्रवाल, मेरठ
42. पं. लाड्लीप्रसाद जैन, सवाईमाधोपुर
43. पं. लालचन्द जैन 'राकेश', गंजबासौदा
44. डॉ. लालचन्द जैन, वैशाली
45. डा. एम.के. गुप्ता, मेरठ
46. डा. महेन्द्र राजा जैन, इलाहाबाद
47. डा. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज', वाराणसी
48. डा. (कु.) मालती जैन, मैनपुरी
49. श्रीमती ममता अग्रवाल, मेरठ
50. पं. मांगीलाल जैन शास्त्री, कूण
51. पं. मनोरंजन शास्त्री, उदयपुर
52. कु. मोनिका जैन, फिरोजाबाद
53. प्रो. मोतीलाल जैन, इन्दौर
54. प्रो. नलिन के. शास्त्री, बोधगया
55. श्री नरेन्द्र जैन, झांसी
56. पं. नरेशचन्द जैन शास्त्री, हस्तिनापुर
57. पं. नाथूराम डोंगरीय जैन, इन्दौर
58. प्रो. नवीन सी. जैन, इन्दौर
59. डा. नेमिचन्द्र जैन, खुरई (सागर)
60. श्रीमती निशा जैन, इन्दौर
61. डा. पी.सी. जैन, मेरठ
62. पं. पदमचन्द जैन, पानीपत
63. डा. फूलचंद प्रेमी, वाराणसी
64. योगीराज श्री फूलचन्द जैन, छतरपुर
65. डा. प्रकाशचन्द्र जैन, उज्जैन
66. पं. प्रवीणचन्द्र जैन शास्त्री, हस्तिनापुर
67. पं. प्रदीपकुमार जैन, हस्तिनापुर
68. डा. प्रेमचन्द जैन रांवका, जयपुर
69. प्रो. प्रेमसुमन जैन, उदयपुर
70. श्रीमती प्रीति जैन, उन्हेल
71. डा. (श्रीमती) पुष्पलता जैन, नागपुर
72. डा. पूनम पांडे, माछरा (मेरठ)
73. डा. राजेश अग्रवाल, मेरठ
74. श्री राजकुमार जोशी, इन्दौर
75. डा. रमा जैन, छतरपुर
76. श्री रमेश कासलीवाल, इन्दौर
77. कु. रश्मि जैन, इन्दौर
78. प्रो. रतनलाल पाटनी, इन्दौर
79. प्रो. एस.ए. कुमार, बैंगलौर
80. प्रो. एस. सी. अग्रवाल, मेरठ
81. प्रो. एस. के. बंडी, इन्दौर
82. डा. संगीता मेहता, इन्दौर
83. श्रीमती समीक्षा नांदगांवकर, उज्जैन
84. श्री संजीव सराफ, सागर
85. पं. सरमनलाल जैन दिवाकर, हस्तिनापुर
86. श्री सत्येन्द्र जैन, जबलपुर
87. डा. शेखरचन्द्र जैन, अहमदाबाद
88. पं. शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी
89. डा. शुभचन्द्र, मैसूर
90. पं. सिंहचन्द्र शास्त्री, चैन्नई
91. डा. शोभनाथ पाठक, जौनपुर (उ.प्र.)
92. डा. सोहनलाल देवोत, लोहारिया
93. श्री सुभाष गंगवाल, सम्पादक, इन्दौर
94. पं. सुभाषचन्द जैन, ग्वालियर
95. डा. स्नेहरानी जैन, सागर
96. पं. सुधर्मचंद जैन, तिवरी (जबलपुर)
97. डा. सुदर्शनलाल जैन, वाराणसी
98. प्रो. सुजाता के. लोखंडे, सोलापुर
99. पं. सुमतिचन्द्र जैन शास्त्री, मोरेना
100. डा. सुशीलकुमार जैन, कुरावली
101. श्री सुरेशचन्द जैन, जबलपुर
102. डा. सुरेश जैन, लखनादौन
103. प्रो. टीकमचन्द जैन, दिल्ली
104. प्रो. उदय जैन, इन्दौर
105. डा. उर्मिला जैन, इलाहाबाद
106. पं. उत्तमचंद राकेश, ललितपुर
107. पं. विजयकुमार जैन शास्त्री, सागर
108. पं. विजयकुमार शास्त्री, श्री महावीरजी
109. पं. विमल कुमार जैन सोंरया, प्रतिष्ठाचार्य, टीकमगढ़
110. डा. विमल कुमार जैन, फिरोजाबाद
111. डा. योगेन्द्र कुमार जैन, इन्दौर

सम्मेलन की विस्तृत आख्या एवं समागत समस्त विद्वानों के पूर्ण पतों हेतु जम्बूद्वीप – हस्तिनापुर अथवा लेखक से सम्पर्क करें।

■ डा. अनुपम जैन, इन्दौर

मत - अभिमत

मेरे लिये ''अर्हत् वचन'' का जुलाई 98 का अंक इसलिये संग्रहणीय व महत्वपूर्ण धरोहर बन गया है क्योंकि उसके मुखपृष्ठ पर बद्रीनाथ स्थित नवनिर्मित भवन में स्थापित 24 वेदिकाओं का आकर्षक चित्र है। जैन धर्म धार्मिक उदारता व आध्यात्मिक विशाल हृदयता के लिये प्राचीन काल से ही समभाव की अद्भुत सामंजस्यता आत्मसात किये हुए है।

बद्रीनाथ जी चतुर्धाम में विख्यात धार्मिक तीर्थ है। 780 ई. के बाद जगद्गुरु शंकराचार्य ने बद्रीनाथ, द्वारिका, जगन्नाथ व रामेश्वरम् में (चारों कोनों पर) चार तीर्थ स्थापित किये। नम्बूतरी पाद सुदूर केरल का पंडित आज भी वहां का प्रमुख पुरोहित होता है। ऐसे सर्वधर्म तीर्थ पर आध्यात्मिक अहिंसा फाउन्डेशन, इन्दौर द्वारा चौबीस चरण स्थापना का फाउन्डेशन के अध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल जी द्वारा किया गया कालजयी ऐसा निर्णय है जो भारत के आधुनिक जैन धर्म के स्मारकों के इतिहास में एक मील का पत्थर साबित होगा। हिमालय की उपत्यका में जैन संस्कृति सनातन काल से रही है। काश्मीर की वादियों में तीर्थंकरों की वाणी गूंजी है। आज इस नये परिप्रेक्ष्य में वहां (बद्रीनाथ में) जैन धर्म के आगमन पर पूरा देश उत्सुक है। धार्मिक समन्वय का यह अद्भुत स्मारक बन पडा है। बौद्ध, वैष्णव, शैव परंपरा के साथ अब जैन धर्म का इतने बडे पैमाने में पहुंचना सुखद व संतोष जनक लगा।

टिप्पणी ''कब तक अपमानित होगी जैन प्रतिमाएँ'' में लेखक खरे की वेदना महसूस की। पुरातत्व की अभूतपूर्व पुरासंपदा कोलारस के समीप खतौरा में नष्ट हो रही है। उनका दर्द जानकर उन्हें सुरक्षित करने का प्रयास व संकल्प भी लेना चाहिये। पचास के दशक में पण्डित सत्यंधर कुमार जी सेठी, संस्थापक - दिगम्बर जैन मूर्ति संग्रहालय, जयसिंहपुरा, उज्जैन इन्दार ग्राम से 3 जैन प्रतिमाएँ अपने संग्रहालय के लिये लेकर आये थे। आज भी वे उक्त संग्रहालय में प्रदर्शित है व उनकी कलात्मक समीक्षा ''जैन संग्रहालय एक परिचय'' ग्रन्थ में रखी गई है। ऐसी विचारोत्तेजक व सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखने की प्रेरणा देने वाली टिप्पणी के प्रकाशित करने वाले संपादक डा. अनुपम जैन अभिनंदनीय है। पुरातत्व प्रेमियों के लिए ऐसी कृतियाँ ज्ञानवर्द्धन के साथ उनसे लगाव व तद् विषयक कार्यवाई के लिए प्रेरणा भी देती है। ''अर्हत् वचन'' अब शोधादर्श के नये कीर्तिमान स्थापित करता जा रहा है। जैन शिल्प व स्थापत्य की इस प्रकार से यह अद्भुत सेवा है।

इसी प्रकार टिप्पणी 5 में महेन्द्रराजा जैन ने जो माइक्रो फिल्म व सी.डी. डिस्क की जानकारी देकर उन्हें इंटरनेट पर सुलभ कराने की बात लिखी है उससे हस्तलिखित ग्रन्थों की सुरक्षा व उनका अधिक से अधिक उपयोग हो सकेगा। कुंदकुंद ज्ञानपीठ ने मालवा के जैन हस्तलिखित भंडारों की जो ''जीरोक्स'' करवा रखी है उनको तो इंटरनेट पर दिया ही जा सकता है। इससे प्रबुद्ध शोधार्थी कुंदकुंद ज्ञानपीठ के बहुआयामी शोधकार्य से अवगत हो सकेंगे।

■ **डा. सुरेन्द्र कुमार आर्य**
संग्रहालयाध्यक्ष - डा. वाकणकर भारतीय संस्कृति अन्वेषण न्यास,
वराहमिहिर मार्ग, माधव नगर, उज्जैन

'अर्हत् वचन' में कुछ समय पूर्व आदरणीय देवकुमारजी ने लिखा था कि आपके पास अभी इतनी अधिक रचनाऐं स्वीकृत पड़ी हैं कि दो - तीन वर्ष तक के लिये काफी होंगी। इस सम्बंध में मैं आपको पहले ही कुछ लिखने वाला था, पर लिखते - लिखते रह गया। अभी आप जिस साइज के टाइप का प्रयोग कर रहे हैं, वह किसी अकादमिक पत्रिका के उपयुक्त तो नहीं है, अत: मेरा सुझाव है कि आप अभी जिस साइज के टाइप में सम्पादक मंडल के सदस्यों के नाम देते हैं (देखिये अक्टूबर अंक, पृष्ठ 2) यदि उसी टाइप में लिख दें तो मेरा ख्याल है कि आप प्रत्येक अंक में कम से कम एक चौथाई अतिरिक्त मैटर दे सकेंगे।

आशा है इस सुझाव पर विचार करेंगे। वैसे आपने अक्टूबर अंक के संपादकीय में संकेत दिया है कि जनवरी अंक से 'अर्हत् वचन' नई साज - सज्जा एवं परिष्कृत रूप में देखने को मिलेगा। विश्वास है कि इस नये परिष्कृत रूप में आप मेरे सुझाव को भी शामिल करना चाहेंगे।

■ **डा. महेन्द्रराजा जैन**
संदर्भ - 8 - ए, बन्दरोड, एलेन गंज,
इलाहाबाद 211002

कोई भी पत्रिका अपने सम्पादक के नाम - गुण को प्रतीकित करने वाली होती है। यह आपकी सम्पादकीय मनीषा से मण्डित अर्हत् वचन के गत अंक से स्पष्ट है। अनुपम द्वारा सम्पादित पत्रिका अनुपम होगी ही।

आपकी इस त्रैमासिकी से जैन चिन्तन को नई दिशा मिल रही है। आज की प्रायः अधिसंख्य जैन पत्रिकाएँ पिष्ट - पेषण का ही काम ज्यादा कर रही हैं किन्तु **अर्हत् वचन** त्रैमासिकी जैनधर्म - दर्शन को जीवन जीने की प्रक्रिया के रूप में जिस वैज्ञानिकता के साथ प्रस्तुत कर रही है वह अतिशय श्लाघ्य और साधुवाद के योग्य है।

■ **विद्यावाचस्पति डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव**
पी. एन. सिन्हा कालोनी,
मिखनापहाड़ी, **पटना** - 800 006

अक्टूबर 98 का **अर्हत् वचन** का अंक मिला। पत्रिका पूरी पढ़ी। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के प्रकाशनों की सूची देखी। डॉ. टी.वी.जी. शास्त्री की 'Jain Sanctuaries of the Fortress of Gwalior' एक महत्वपूर्ण प्रकाशन है। इसका अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचार - प्रसार होना चाहिये। ग्वालियर की प्रतिमाओं की विशालता एवं भव्यता दर्शनीय है। शास्त्रीजी की पुस्तक ज्ञानपीठ का गौरव बढ़ाने वाली है। दिगम्बर सांस्कृतिक एवं साहित्यिक संस्थाओं में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने बहुत प्रगति की है और इसके प्रकाशन, इसके द्वारा संचालित शोध संस्थान, सन्दर्भ पुस्तकालय, ज्ञानपीठ पुरस्कार इन सबके द्वारा दिगम्बर जैन धर्म के विज्ञान की खोज को बड़ी सहायता मिली है। जैनाचार्यों ने जो उपकार किया है, उसका लाभ सभी प्राप्त कर सकें, इस दिशा में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ अग्रसर है। मेरी शुभकामनाएँ स्वीकार करें।

■ **डॉ. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल**
निदेशक - वृन्दावन शोध संस्थान, आगरा

अर्हत् वचन, वर्ष 10, अंक 4, अक्टूबर 1998 में प्रकाशित श्री राजकुमार नांदगांवकर के लेख '**पर्यावरण विज्ञान के जनक भगवान ऋषभदेव**' में 'वनस्पति जगत की व्याख्या' के अन्तर्गत कल्पवृक्षों को वनस्पति मानकर भी पृथ्वीकायिक लिखा है जो परस्पर विरोधी है। अर्हत् वचन, वर्ष 9, अंक 2, अप्रैल 1997 में प्रकाशित मेरे लेख 'Kalpvrikshas, The Benovelent Trees' (Scientific Interpretation) में पृष्ठ 64 पर भारतविकता के आधार पर प्रमाणित किया है कि कल्पवृक्ष वस्तुतः वनस्पति ही थे। जैन दर्शन की वैज्ञानिकता की दृष्टि से इस पर विद्वानों का स्पष्ट अभिमत अभीप्सित है।

■ **सूरजमल जैन**
से. नि. अधिकारी - राजस्थान वन सेवा
7 - बी, तलबंडी, **कोटा** – 324 005

अर्हत् वचन का अक्टूबर 98 अंक मिला। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ तथा हस्तिनापुर शोध संस्थान के बारे में जानकारी मिली। जैन धर्म के कई विषयों पर चिन्तन / शोध की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

अर्हत् वचन के उपरोक्त अंक में ही तत्वार्थ सूत्र में जीव विज्ञान की अवधारणा में **परस्परोपग्रहो जीवानाम्** तथा स्थावर जीवों पर विवेचन है। निष्कर्ष में अन्वेषण / अनुसंधान की आवश्यकता बताई गई है।

भारतीय ज्ञानपीठ के आचार्य गोपीलाल 'अमर' ने खतौली से डा. कपूरचन्दजी जैन द्वारा द्वारा लिखित प्राकृत एवं जैन विद्या शोध सन्दर्भ में जैन विषयों का, जिन पर शोध की आवश्यकता है, अच्छा 'दिशा बोध दिया है। अब शोध को कैसे कार्य रूप में परिणित किया जाये? मेरे चिन्तन में आता है कि जैन विद्वानों और मनोविज्ञान (Psychology), वनस्पति विज्ञान तथा सूक्ष्म जीव विज्ञान (Microbiology) के विद्वानों के संयुक्त निर्देशन में जैन विद्या के शास्त्री को, जिन्होंने उपरोक्त विषयों में M.A./M.Sc. किया हो, उन विषयों पर शोध / चिन्तन के लिये उत्साहित किया जाये, उनके लिये 1 - 2 - 3 साल की छात्रवृत्ति दी जाये। मेरा / हमारे ट्रस्ट का इसमें नम्र सहयोग रहेगा।

■ **पी. सी. जैन**
8 / 1, लाल बाजार स्ट्रीट, रूम नं. 2 - ए,
कलकत्ता – 700 001
फोन - 230362

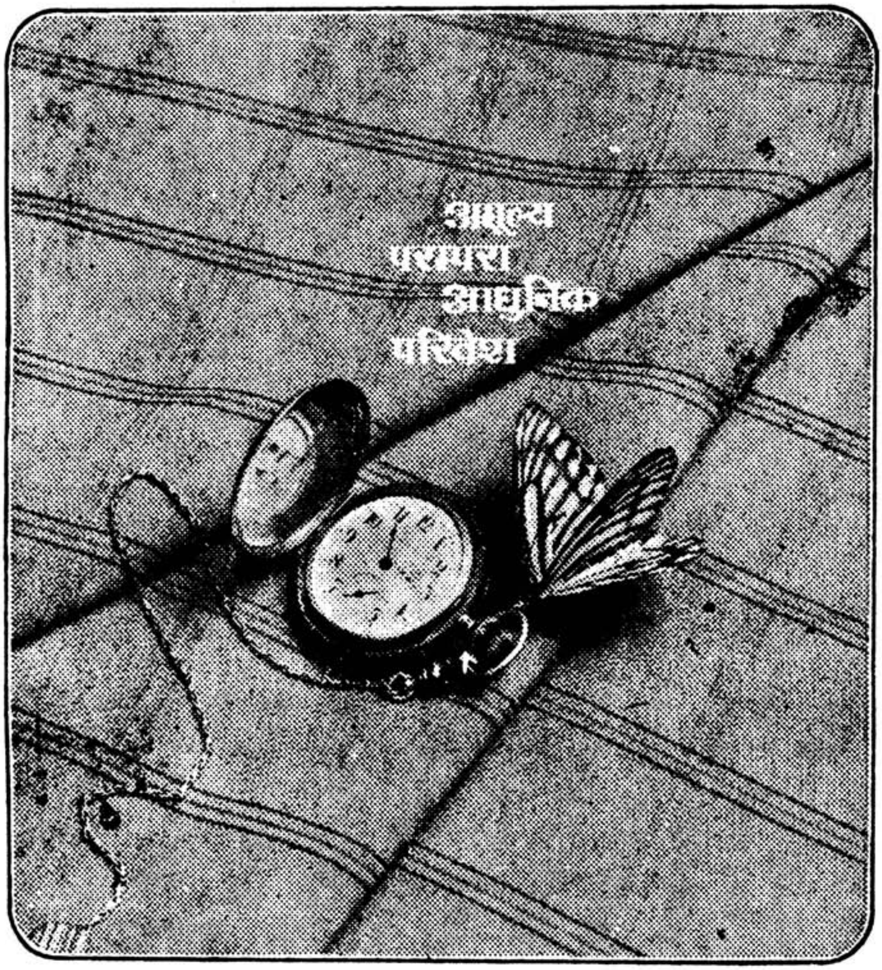

एस.कुमार्स द्वारा दोनों ही अनुपम गुणों का समन्वय

आधुनिक परिवेश में सुसज्जित हमारे वस्त्रों में
उन अमूल्य गुणों का भी समावेश रहता है
जिन्हें समय भी बदल नहीं पाया...
यह अमूल्य निधि अर्थात हमारी परम्परा
प्रतिबिम्बित है हमारे वस्त्रों के कलात्मक डिज़ाइनों,
पोत एवं बुनावट शैलियों के साथ उत्कृष्टता,
टिकाऊपन तथा किफ़ायत जैसे दुर्लभ गुणों के
समन्वय में। इसीलिये जब भी आप
उत्कृष्ट वस्त्र खरीदना चाहेंगे तो एस. कुमार्स वस्त्रों में
एक बात सुनिश्चित पायेंगे कि आपको
प्राप्त होगा लाभ ही लाभ।

एस.कुमार्स®

टेरीन सूटिंग, शर्टिंग, साड़ियां

'निरंजन', ९९, मरीन ड्राइव,
बम्बई ४०० ००२

ऊंची से ऊंची क्वालिटी-नीचे से नीचे दाम

हमारे नवीन प्रकाशन

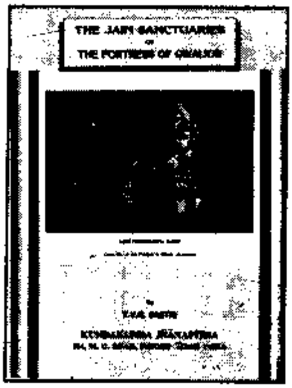

THE JAIN SANCTUARIES OF THE FORTRESS OF GWALIOR

By - **Dr. T.V.G. SASTRI**

Price - Rs. 500.00 (India)
U.S.$ 50.00 (Abroad)

I.S.B.N. 81-86933-12-3

जैनधर्म : विश्वधर्म

- लेखक -

पं. नाथूराम डोंगरीय जैन

मूल्य - रु. 10.00

I.S.B.N. 81-86933-13-1

हमारे अन्य प्रकाशन

पुस्तक का नाम	लेखक	I.S.B.N.	मूल्य
✲ 1. जैनधर्म का सरल परिचय	पं. बलभद्र जैन	81-86933-00-x	200.00
2. बालबोध जैनधर्म, पहला भाग संशोधित	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-01-8	1.50
3. बालबोध जैनधर्म, दूसरा भाग	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-02-6	3.00
4. बालबोध जैनधर्म, तीसरा भाग	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-03-4	4.00
5. बालबोध जैनधर्म, चौथा भाग	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-04-2	3.75
6. नैतिक शिक्षा, प्रथम भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-05-0	3.75
7. नैतिक शिक्षा, दूसरा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-06-9	3.75
8. नैतिक शिक्षा, तीसरा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-07-7	3.75
9. नैतिक शिक्षा, चौथा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-08-5	5.00
10. नैतिक शिक्षा, पांचवां भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-09-3	6.00
11. नैतिक शिक्षा, छठा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-10-7	6.00
12. नैतिक शिक्षा, सातवां भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-11-5	4.00

✲ अनुपलब्ध

प्राप्ति सम्पर्क : कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001

भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, जम्बूद्वीप - हस्तिनापुर
मंच के दो दृश्य

पूज्य गणिनी ज्ञानमती माताजी के ससंघ सान्निध्य में उपस्थित कतिपय कुलपतिगण (5.10.98)

समापन सत्र (6.10.98) में मंचासीन आयोजन समिति के पदाधिकारीगण - डॉ. अनुपम जैन - मंत्री, श्री राजकुमार जैन (वीरा बिल्डर्स) - महामंत्री, प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल - उपाध्यक्ष, प्रो. प्रभुनारायण मिश्र - उपाध्यक्ष, कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन - अध्यक्ष, पूज्य भट्टारक धवलकीर्तिजी एवं जम्बूद्वीप के पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागरजी महाराज

सम्मेलन के उद्घाटन सत्र (4.10.98) में दिगम्बर जैन महासमिति के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल का सम्मान करते हुए पूर्व मंत्री तथा सासंद श्री धनंजयकुमार (मैंगलोर)

द्वितीय सत्र में प्रो. अलाउद्दीन अहमद (कुलपति – जामिया हमदर्द विश्वविद्यालय, दिल्ली) को प्रतीक चिन्ह समर्पित करते हुए प्रो. डी. पी. तिवारी (कुलपति – चौधरी चरणसिंह वि.वि., मेरठ)

सम्मेलन में ज्ञानपीठ के प्रकाशनों का विमोचन

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की शोध त्रैमासिकी 'अर्हत् वचन' के 40 वें अंक का विमोचन करते हुए कुरुक्षेत्र वि.वि. के कुलपति प्रो. एम. एल. रंगा (दायें) एवं समीप हैं सम्पादक मण्डल के सदस्य प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल (मेरठ), सम्पादक डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर) एवं सन्मति वाणी मासिक के सम्पादक श्री जयसेन जैन (इन्दौर)

श्री बाबूलाल तोतारामजी लुहाड़िया के आर्थिक सहयोग से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'जैनधर्म : विश्वधर्म' का विमोचन करते हुए मैसूर वि.वि., मैसूर के कुलपति प्रो. एस. एन. हेगड़े। समीप खड़े हैं लेखक पं. नाथूराम डोंगरीय जैन (इन्दौर) एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के सचिव डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर)

समापन सत्र में गणिनी ज्ञानमती शोधपीठ के संस्थापक निदेशक प्रो. राजकुमार नांदगांवकर (पूर्व कुलपति) का सम्मान करते हुए आयोजन समिति के महामंत्री श्री राजकुमार जैन (वीरा बिल्डर्स) तथा अध्यक्ष ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन

तीर्थंकर ऋषभदेव राष्ट्रीय विद्वत् महासंघ का दीप प्रज्जवलित कर शुभारम्भ करते हुए श्री अनिलकुमार जैन कागजी (प्रीतविहार, दिल्ली)। समीप हैं (बायें से) क्रमशः डॉ. अनुपम जैन (संस्थापक महामंत्री) एवं डॉ. प्रेमसुमन जैन (संस्थापक अध्यक्ष)

जैन जगत का जाज्वल्यमान नक्षत्र अस्त हो गया

साहू श्री अशोककुमारजी जैन

जैन जगत के शीर्ष पुरुष, अखिल भारतवर्षीय दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी सहित देश की अनेकानेक धार्मिक संस्थाओं / ट्रस्टों के अध्यक्ष **साहू श्री अशोककुमारजी जैन** का असामयिक निधन क्लीवलैण्ड - अमेरिका के एक निजी अस्पताल में 4 फरवरी 99 को प्रातः 2 - 3 के मध्य हो गया। ज्ञातव्य है कि श्री जैन हृदय रोग से पीड़ित थे एवं विगत वर्षों में 3 बार बायपास सर्जरी के उपरान्त गत 10 जनवरी 99 को ही उनका हृदय प्रत्यारोपण का सफल आपरेशन किया गया था। किन्तु निधन के एक सप्ताह पूर्व से उनका स्वास्थ्य पुनः गिरने लगा था। 4 फरवरी की प्रातः संस्थाध्यक्ष **श्री देवकुमारसिंहजी कासलीवाल** को अमेरिका से दूरभाष पर यह दुःखद समाचार प्राप्त होते ही समस्त इन्दौर नगर में ही नहीं वरन् सारे देश में शोक की लहर दौड़ गई। भारत के प्रधानमंत्री माननीय **श्री अटलबिहारी बाजपेयी**, सूचना एवं प्रसारण मंत्री **श्री प्रमोद महाजन**, कांग्रेस अध्यक्ष **श्रीमती सोनिया गांधी** ने उनके निधन पर गहरा दुःख व्यक्त करते हुए उनके राष्ट्र एवं समाचार जगत को दिये अवदान की प्रशंसा की। म. प्र. के मुख्यमंत्री माननीय **श्री दिग्विजयसिंह** ने उन्हें एक सफल प्रशासक, नेक एवं मृदुभाषी इन्सान बताते हुए उनके योगदान की प्रशंसा की।

'टाइम्स ऑफ इण्डिया' समाचार पत्र समूह के अध्यक्ष श्री जैन अनेक व्यापारिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं से जुड़े थे। उन्होंने विभिन्न समयों पर 'फेडरेशन ऑफ इण्डियन चेम्बर ऑफ कामर्स एण्ड इन्डस्ट्रीज', 'सीमेन्ट मेन्युफेक्चरर्स एशोसिएशन', 'इंडियन पेपर मिल एशोसिएशन', 'बिहार इन्डस्ट्रीज एशोसिएशन' आदि अनेक व्यापारिक संस्थाओं के अध्यक्ष पद को गौरवान्वित किया। वे अपने साहित्य प्रेमी माता - पिता श्रीमती रमादेवी जैन एवं साहू शान्तिप्रसादजी जैन द्वारा स्थापित देश के लब्ध प्रतिष्ठ प्रकाशन संस्थान भारतीय ज्ञानपीठ के प्रबन्ध न्यासी, टाइम्स रिसर्च फाउण्डेशन एवं टाइम्स रिसर्च फैलोशिप कौंसिल के भी अध्यक्ष थे।

65 वर्षीय श्री जैन अपने शोक संतप्त परिवार में अपनी पत्नी श्रीमती इन्दु जैन, पुत्र श्री समीर जैन एवं विनीत जैन तथा पुत्री श्रीमती नंदिता जैन को छोड़ गये हैं।

साहू श्री अशोक जैन के निधन से शोक संतप्त कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार ने नगर के बुद्धिजीवियों एवं जैन विद्या प्रेमियों की शोक सभा 5 फरवरी 99 को अपरान्ह 3.30 पर कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय में आयोजित की। श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल की अध्यक्षता में आयोजित इस शोक सभा का प्रारम्भ दि. जैन उदासीन आश्रम, इन्दौर के अधिष्ठाता **ब्र. श्री अनिलजी** के वैराग्यवर्धक संबोधन से हुआ। उन्होंने जैन तीर्थों के विकास हेतु साहूजी के समर्पण की भूरि - भूरि प्रशंसा की।

संस्था के सचिव **डॉ. अनुपम जैन** ने साहू श्री अशोककुमार जैन के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की गतिविधियों में उनकी सतत् अभिरूचि एवं सहभागिता

शोक सभा का दृश्य

की चर्चा की।

संहितासूरि पं. नाथूलालजी शास्त्री ने कहा कि 'साहित्य एवं समाज के क्षेत्र में वही काम कर सकता है जिसे बाहरी दुनिया से कुछ लेना - देना न हो एवं जो उसके प्रति पूर्णतः समर्पित हो। साहूजी तन - मन - धन से साहित्य सेवा में लगे थे।'

प्रो. नवीन सी. जैन, निदेशक ने उन्हें मीडिया का मैग्नेट निरुपित करते हुए कहा कि टाइम्स ऑफ इण्डिया भारत का ऐसा समाचार पत्र है जिसे सारी दुनिया में पढ़ा जाता है। वह भारत की शान है। साहूजी इस समाचार पत्र समूह के अध्यक्ष थे। पत्रकारिता के क्षेत्र में उनका योगदान अविस्मरणीय है।

प्रो. श्रेणिक बंडी ने उनके निधन को जैन समाज की अपूरणीय क्षति बतलाया। **प्रज्ञाचक्षु ब्र. सुखलालजी** ने कहा कि जो आया है, उसका जाना तो निश्चित है, किन्तु जो अच्छे काम करके जाता है उसको सभी याद करते हैं। साहूजी का योगदान ही ऐसा है कि उनको युगों - युगों तक याद किया जायेगा।

आश्रम ट्रस्ट के ट्रस्टी **श्री कैलाशचन्द चौधरी** ने कहा कि परमश्रद्धेय साहूजी के निधन की क्षति पूर्ति तो नहीं हो सकती किन्तु यदि समाज संगठित होकर काका साहब (देवकुमारसिंहजी कासलीवाल) जैसे वरिष्ठजनों के मार्गदर्शन में उनके संकल्पों की पूर्ति हेतु प्रयत्नशील हो तो यह सच्ची श्रद्धांजलि होगी। जब तक सम्मेदशिखर रहेगा, साहूजी का नाम अमर रहेगा।

अध्यक्ष श्री कासलीवाल ने साहू अशोककुमारजी से अपने निकट एवं आत्मीय संबंधों की चर्चा करते हुए बताया कि उनके प्रयासों से ही आज सम्मेदशिखर पर दिगम्बर जैन समाज का अधिकार मिला है एवं उसके विकास का पथ प्रशस्त हुआ है। उनकी भावना थी कि सम्पूर्ण जैन समाज संगठित होकर कार्य करे जिससे आधुनिक विश्व को जैन साहित्य के गौरव से परिचित कराया जा सके। आपने कहा कि यद्यपि उनका भौतिक शरीर अब नहीं है लेकिन उनके द्वारा बताया गया पथ एवं मार्गदर्शन सदा साथ रहेगा।

शोक सभा के अवसर पर साहूजी के चित्र पर माल्यार्पण करते श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल

साहूजी के चित्र पर माल्यार्पण के साथ ही इस अवसर पर 9 बार णमोकर मंत्र का

जाप करके दिवंगत आत्मा की शीघ्र मुक्ति एवं शोक संतप्त परिवार के धैर्य की कामना की गई। इसी अवसर पर एक शोक प्रस्ताव भी पारित किया गया।

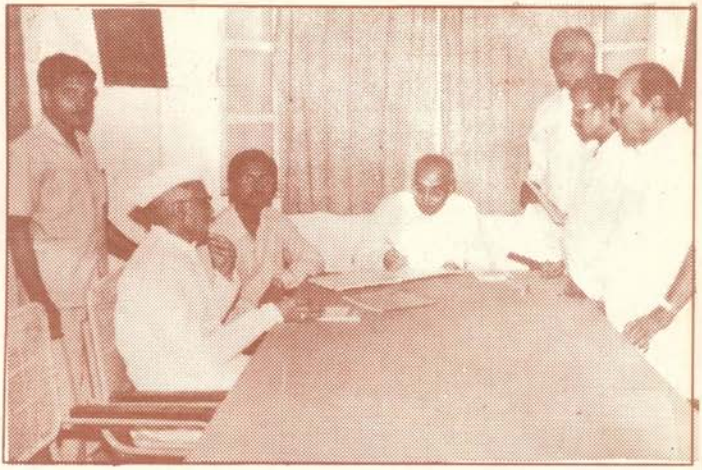

साहूजी कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में

अक्टूबर 1988 में अर्हत् वचन के प्रवेशांक (वर्ष - 1, अंक - 1, सितम्बर 1988) का आपने श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल के साथ तत्कालीन उपराष्ट्रपति महामहिम डॉ. शंकरदयालजी शर्मा से दिल्ली में विमोचन कराया था, वे इसके आजीवन सदस्य भी थे। 1995 - 96 में आपने कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ हेतु एक विस्तृत परियोजना की स्वीकृति हेतु भी प्रस्ताव किया था। जैन धर्म / दर्शन के वैज्ञानिक पक्ष के प्रस्तुतीकरण की कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की प्राथमिकता के वे प्रबल पोषक थे। मई 1995 एवं अक्टूबर 95 में आप कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में स्वयं पधारे एवं अर्हत् वचन की 10 वर्षीय विकास यात्रा में वे सतत हमारे सहयोगी रहे। मई 95 में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में आगमन के समय आगंतुक पंजी पर लिखा गया उनका अभिमत हमारी अमूल्य सम्पत्ति है। (अगले पृष्ठ पर देखें)

अमृत महोत्सव में काकासाहब को तिलक लगाते हुए साहूजी

अक्टूबर 95 में वे श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल अमृत महोत्सव में आप प्रमुख अतिथि थे। इस कार्यक्रम में साहूजी ने श्री कासलीवालजी के नेतृत्व की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए कहा कि श्री (देवकुमारसिंह) कासलीवाल द्वारा समाज, शिक्षा, चिकित्सा के क्षेत्र में किये गये उनके कार्य तो अभिनन्दनीय हैं हीं, तीर्थों के लिये भी उन्होंने जो कार्य किये हैं वे सदा उनकी याद दिलाते रहेंगे। विशेषकर बद्रीनाथ तीर्थ में अष्टापद की स्थापना उनके शुभप्रयासों का सुफल है।

अमृत महोत्सव स्मारिका हेतु अपने संदेश में आपने लिखा कि धर्म के प्रति निष्ठा और आचरण की पवित्रता के साथ श्री देवकुमारसिंह की एक विशिष्टता यह है कि लक्ष्मी और सरस्वती दोनों के प्रिय भाजन है। साहित्य की अभिवृद्धि के लिये उन्होंने **कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ** की स्थापना की है और वहाँ से **अर्हत् वचन** के नाम से प्रकाशित त्रैमासिक शोध पत्रिका में उन अनेक जैनाचार्यों व शोध विषयों का उल्लेख होता है जो साहित्य के क्षेत्र में जैन संस्कृति के गौरवपूर्ण अभिदान को व्यक्त करते हैं। उनका यह अत्यन्त सराहनीय कार्य है।

शोक प्रस्ताव

प्रसिद्ध उद्योगपति एवं समाजसेवी, टाइम्स ऑफ इण्डिया समाचार पत्र समूह के अध्यक्ष, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष एवं देश की अनेकों धार्मिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं के अध्यक्ष / संरक्षक / प्रेरक साहू अशोककुमारजी जैन का असामयिक निधन 4 फरवरी 1999 को क्लीवलैण्ड - अमेरिका में भारतीय समयानुसार प्रातः लगभग 3 बजे हो गया है। 65 वर्षीय श्री जैन के निधन से न केवल जैन अपितु सम्पूर्ण भारतीय शैक्षणिक जगत की अपूरणीय क्षति हुई है। देश के प्रतिष्ठित अकादमिक संस्थान भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रवर्तित भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार भारतीय भाषाओं में रचनात्मक लेखन का सर्वोच्च एवं सर्वाधिक प्रतिष्ठित पुरस्कार है।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की गतिविधियों में उनकी सदैव से विशिष्ट अभिरूचि रही है। 6 मई 1995 को वे स्वयं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय में पधारे थे एवं यहाँ की गतिविधियों तथा शोध पत्रिका की मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की यह सभा दिवंगत आत्मा की मुक्ति एवं शोक संतप्त परिवार को धैर्य प्राप्त होने की कामना करती है।

इन्दौर, 5 फरवरी 99, मध्यान्ह 3.30 — **कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार**

अतिथि पुस्तिका में उनके द्वारा अंकित अभिमत की प्रतिलिपि नीचे प्रस्तुत है।

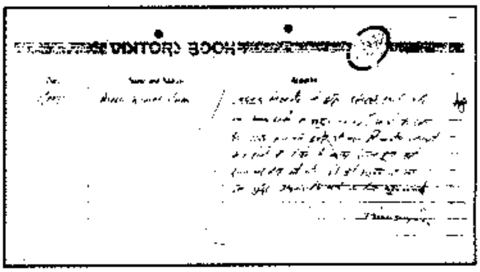

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के द्वारा इतिहास, दर्शन आदि के अनेक क्षेत्रों में बहुत महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है। इसके मुख पत्र द्वारा भी बहुत ही पठनीय सामग्री प्राप्त होती है जिसे मैं बराबर देखता हूँ। श्री देवकुमारसिंहजी को और श्री अनुपमजी को इस सुन्दर अनुकरणीय कार्य के लिये बहुत बधाई।

6 मई 95 — **अशोककुमार जैन**

भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, जम्बूद्वीप – हस्तिनापुर, 4 – 6 अक्टूबर 98
के अवसर पर पधारे माननीय कुलपतिगण / पूर्व कुलपतिगण / कुलपति प्रतिनिधि

प्रो. एस. रिन्पोछे, वाराणसी

प्रो. अलाउद्दीन अहमद, दिल्ली

प्रो. डी. पी. तिवारी , मेरठ

प्रो. विद्यावती, वारंगल

प्रो. सी. अंजनमूर्ति, मैसूर

प्रो. एस. एन. हेगड़े, मैसूर

प्रो. सुरेशप्रसाद सिंह, आरा

प्रो. आद्याप्रसाद मिश्र, जबलपुर

प्रो. इन्द्राणी चक्रवर्ती, खैरागढ़

प्रो. ए. के. मैत्रा, दिल्ली

प्रो. एम. एल. रंगा, कुरुक्षेत्र

प्रो. मुनियम्मा, गुलबर्गा

प्रो. एस. के. शर्मा, वाराणसी

प्रो. बलवीरसिंह भसीन, बोधगया

प्रो. नांदगांवकर, उज्जैन

प्रो. शरद भांड, भोपाल

प्रो. एस.एन.पी. सिन्हा, पटना

प्रो. उषाकर झा, दरभंगा

डॉ. शोभिता जैन, दिल्ली

प्रो. पी. एन. मिश्र, इन्दौर

I.S.S.N. 0971 - 9024

अर्हत् वचन भारत सरकार के समाचार - पत्रों के महापंजीयक से प्राप्त पंजीयन संख्या 50199 / 88

स्वामित्व श्री दि. जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर की ओर से देवकुमारसिंह कासलीवाल द्वारा 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर से प्रकाशित एवं **सुगन ग्राफिक्स,** यू.जी. 18, सिटी प्लाजा, म.गा. मार्ग, इन्दौर द्वारा मुद्रित।

मानद् सम्पादक - **डॉ. अनुपम जैन**